प्रसाद की 'ग्राम' कहानी में छायावाद और स्त्री शोषण की झलक

डॉ. हसनखान के. कुलकर्णी
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज बी. आर. अंबेडकर विधी
बेंगलुरू-560001

जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1889 को काशी में हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती मुन्नीदेवी था, वह धार्मिक आचरणवाली महिला थीं। तीर्थ यात्रा को जाते समय बेटे 'जयशंकरप्रसाद' को साथ लेकर जाती थी। प्रसाद की माता का देहांत 1905 ई. को हुआ। इनके पिता का नाम **देवीप्रसाद** था यह सुँघनी साहू परिवार के नाम से पहचाने जाते थे। वे एक प्रसिद्ध व्यापारी भी थे। प्रसाद के पिता साहित्य की अभिरुचिवाले होने के कारण बडे-बडे साहित्यकारों का घर को आना-जाना होता था। इस लिए प्रसाद को बचपन में ही बडे-बडे साहित्यकारों की पहचान हुई। 'जयशंकर प्रसाद' को बचपन से ही साहित्य की अच्छी जानकारी मीली। शैव परिवार के होने के कारण इनपर शैवदर्शन का अच्छा प्रभाव पडा। इनकी १३ वर्ष की आयु में ही पिता देवी प्रसाद का देहांत होगया।

प्रसाद का बचपना सुख में बीता किंतु प्रौढावस्था में मत-पिता का देहांत होजाने पर प्रसाद का परिवार कष्ट में आगया। इनके भाई **शंभुरत्न** जयशंकर प्रसाद की पढाई का खर्च उठा रहे थे। अचानक 1907 ई. को उनका भी देहांत होगया। प्रसाद को शिक्षा बीच में ही छोडनी पडी। इतना कष्ट झेलने के बावजूद भी जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के एक महान दिग्गज बनकर बाहर निकले और विश्व प्रसिद्धि पाए। उनके कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न दिया गया है:-

काव्य:- कानन कुसुम, महाराणा का महत्व, चित्राधार, प्रेम पथिक, झरना, आँसू, लहर, कामायनी।

नाटक:- राज्यश्री, विशाखा, अजात शत्रु, जनमेजय का नाग यज्ञ, कामना, स्कंद गुप्त, एक घूँट, चंद्र गुप्त, ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास:- कंकाल, तितली, इरावत।

कहानी संग्रह :- छाया, प्रति ध्वन।

छायावाद का अर्थ :-

छायावद वह आत्माभिव्यक्ति है, जो कवि सौंदर्यमय प्रकृति की कल्पना करके काव्य की आत्मा ध्वनी और लक्षणा तत्वों द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करता है। छाया को कन्नड में नेरलु [ನೆರಳು] कहते हैं, हिंदी में इसका मतलब है 'छाँव'। प्रसाद जैसे प्रकृति प्रेमी कवि सुंदर प्रकृति देवि के चित्रण के साथ सामाजिक समस्याओं का वर्णन करता जाते हैं।

प्रसाद की ग्राम कहानी में छायावाद की झलक

"टन ! टन ! टन ! स्टेशन पर घंटी बोली।"[1]

श्रावण मास की संध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है मेघ-माला-विभूषित गगन की छाया सघन रसाल-कानन में पड रही है ! अंधियारी धीरे-धीरे अपना अधिकार पूर्व–गगन में जमाती हुई सुशासन कारिणी महाराणी के समान, विहंगप्रजागण को सुख-निकेतन में शयन करने की आज्ञा देरही है।"[2]

ग्राम कहानी के आरंभ में ही छायावाद के शिरोमणी प्रसाद छायावाद की झलक देते हुए लिखते हैं कि टन ! टन ! टन रेल की घंटी बजी अर्थात रेल आने का समय हुआ सभी को रेल बुला रही है मुसाफ़िरों को उनके मंजिल तक पहुंचाना चाहती है, वह बोल रही है आओ, आओ। यहाँ घंटी का मानवी करण हुआ है अर्थात प्रसाद ने घंटी को मानव के रूप में देखा है। किस प्रकार मनुष्य या एक सेवक अपने प्रभु की सेवा के लिए तैयार रहता है उसी प्रकार घंटी भी यात्री प्रभुओं की सेवा कर रही है। आजकल यह काम रेल स्टेशनों में कहीं-कहीं सैरन कर रहा है। छावाद के लेखक, कवियों की यह लिखने की कला है। उसमें जयशंकर प्रसाद अग्र गण्य हैं। इसी प्रकर और एक छायावादी कवि सूर्य कांत त्रिपाठी निराला संध्या का वर्णन करते हुए अपनी कविता **'संध्यासुंदरी'** में लिखते हैं-

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह संध्या-सुंदरी परी सी, धीरे धीरे धीरे।[3]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि निराला जी संध्या ([illegible]) को स्त्री के रूप में देखते हुए उसका वर्णन करते हैं। दिन बीतने का समय है, आकाश में घने बादल छाए हुए हैं, ऐसे समय में संध्या (श्याम रूपी सुंदरी) एक स्वर्ग की सुंदर परी के समान अथवा सुंदर स्त्री केसमान धीरे – धीरे आसमान से उतर रही है। यह भी एक छायावाद का सुंदर उदाहरण है।

कवि प्रसाद प्रकृति को स्त्री के रूप में देखते हुए लिखते हैं कि श्रावण के मही ने की एक शाम [संध्या काल] किस प्रकार नव वधु की तरह सुंदर लग रही है, उसका वर्णन किए हैं। बादलों का सुंदर हार उसके गले में है, आकाश की छाँव भयंकर रस भरे पेड-पौधों के वन प्रदेश में पड रही है। जयशंकर प्रसद अंधेरी रात को भी एक सुंदर स्त्री के रूप में देखते हुए कहते हैं- रात आकाश, वन प्रदेश में शासन करही है, अपना अधिकार सारे आकाश में स्थापित कर रही है। प्रसाद को रात इंग्लेंड की विक्टोरिया राणी की तरह लग रही है। यह सच भी लगता है कि रात के समय सारा समाज, पशु-पक्षि, सो जाते हैं। जागते हैं तो केवल निशाचर, राक्षस जै से जन जो मनुष्य समाज का बुरा करते लूट-मार करते, कत्ल करते, एटीएम लूटते घूमते हैं। इन बुरों पर एक नजर रख कर सारे जीवों को चैन से सुलाती है। इस प्रकार प्रकृति का वर्णन करते हुए वे 'ग्राम' कहानी में एक दुखी नारी की हृदय को स्पर्श करनेवाली कथा सुनाना चहते हैं।

जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' कहानी एक दुखी नारी की कहानी है। इसमें 'कसुम पुर' नामक छोटे से गाँव की घटना का वर्णन है। इस कहानी में 4 प्रमुख पात्र हैं 1) कुंदन लाल 2) बाबू मोहन लाल 3) दुखी नारी 4) स्टेशन मास्टर। इसमें स्त्री

आरंभ में प्रकृति का चित्रण और जड वस्तुओं का मानवीकरण करते हुए फ्रसाद लिखते हैं कि- रेलगाडी आकर 'ग्राम' स्टेशन पर टन! टन! आवाज के साथ रेल यात्रियों को पुकारते हुए आकर रुकती है। उसके पुकारने के साथ ही सभी यात्री अपने- अपने सामान लेकर सटेशन और गाडी की तरफ़ भागते हैं। इस ट्रेन में से **'बाबु मोहन लाल'** घोडे का हंटर (चाबुक, घोडेको मारने की लकडी) घुमाते हुए दूसरे क्लास के डिब्बे से उतरते हैं। स्टेशन माष्टर से कुसुम पुर को जा विद्रोही मजदूरों के दंगों को काबू में रकने, इंस्पेक्शन को जाने की बात करते हैं और कुसुम पुर की तरफ़ निकल पडते हैं। 'कसुम पुर' यह उनका इलाका था। शाम होरही थी, किसान अपने मित्र बैलों के साथ गीत गाते-गाते घर की तरफ़ प्रस्थान कर रहे थे। विशाल वृक्ष के नीचे कुछ सहेलियाँ झूले में खेल रही थीं कुछ स्त्रियाँ पूर्व परिचत मोहन लाल को देख कर चकित हुईं और मोहनलाल पूछने पर उनको कुसुम पुर जाने का रास्ता बताईं। मोहनलाल स्त्रियों के इशारे पर खेत की पगडंडी पर चल पडे। आकाश में खूब बादल छाये हुए थे और वर्षा भी खूब हो रही थी। रात के जुगनु, तारे चमक रहेथे गहरी रात हो गई थी, बाबू मोहन लाल रात में रास्ता भी भूलने लगे। अंधेरी रात में वे रास्ता भटकते-भटकते वह एक खेत के समीप पहुँचे तो वहाँ खेत में एक ऊँचा

मचान (झोपडी) दिखाई दिया और वहाँ नजदीक ही एक कच्चा मकान भी था । ऊँचे मचान पर बालक-बालिकाएँ खेलरहे थे। मचान की ओर आती हुई एक **5 वर्ष की बालिका** दिखाई दी उसको रूखी आवाज में पूछते हैं कि- "कुसुम पुर का रस्ता किधर है? बालिका साहस की साथ कहती है- मैं नहीं जानती !"[4] मोहनलाल जानने वाले जोभी हैं उनके पास बुला लेजाने कहते हैं और उनसे रास्ता पूछना चाहते हैं। तब 5 वर्ष की वह लडकी अपने घर में रहने वाली विधवा माँ के पास बुला ले जाती है।

स्त्री शोषण का चित्रण:-

एक छोटी सी झोपडी में 50 वर्ष की एक सुंदर भारतीय नारी बडे कष्ट से अपने बच्चों के साथ अपना जीवन बीता रही थी मोहनाला स्त्री को झुककर सलाम करते हैं स्त्री सलाम का जावब देती है और आशिर्वाद देती है। वह उनके लिए नया इलाका और नया रास्ता था वह जंगल में रास्ता भटकने के कारण उन्हें एक रात वहीं दूसरे गाँव में स्त्री के घर में रूकना पडता है। उस 5 वर्ष कीए बालिका की माँ उनका आतिथ्य सत्कार करती है। वे कुसुम पुर जाने की बात कहते हैं, तो कुसुम पुर का नाम सुनते ही स्त्री के आँखों में आसूँ आजाते हैं। स्त्री अपनी दुखद कहानी सुनाती है- स्त्री कहने लगी-" हमारे पती इस प्रांत के गण्य भूस्वामी (Land lord) थे और वंश भी हम लोगों का बहुत उच्च था। जिस गाँव का अभी आपने नाम लिया है, वहीं हमारे पति की प्रधान जमीनदारी थी। अनिवार्या कार्य वश 'कुंदनलाल' नामक एक महाजन से ऋण (कर्ज) लिया गया।"[5] स्त्री रोते-रोते 'कुंदनला' अपने पती की सारी जमीन थोडे ही पैसे में हतियाने की बात कहती है। उसके बाद उसे दूसरे गाँ में आकर रहना पड रहा है और पडोसी गाँवका जमींदार धर्मात्मा और वह जमीन देने की बात भी कहती है । स्त्री के मुह से पिता के लोगों पर अन्याय करके जमीन हतियाने की और पैसा कमाने की बात सुनते ही मोहन लाल शर्मिंदा होकर सर झुकालेते हैं, क्यों कि स्त्री अपने प्रिय पति से दूर होने का प्रमुख कारण स्त्री घर से बे घर करने का कारण मुख्य रूप से मोहन लाल के अपने पिता **'कूंदन लाल'** ही थे।

निष्कर्ष :-

ग्राम कहानी को पढने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे इस समाज में, विश्व में अच्छे लोग भी हैं बुरे लोग भी हैं । अच्छे लोगों की तारीफ़ पीढी दर पीढी होती रहती है और बुरे लोगों का अपमान कदम-कदम पर होता रहता है। यहाँ तक के मनुष्य के कर्मों का फ़ल उनकी पीढी दर पीढी को सदियों तक सहना पडता है। स्त्री जो अंत में कहती है –" जो कि वह ले लेना चहता था बहुत थोडे (कम) रुपये में निलाम करा लिया।.....इसी से उनकी (पति) मृत्यू हो गयी।..... यहाँ के जमींदार धर्मात्मा हैं, उन्हों ने सामान्य 'कर' पर यह भूमि दी है, इसी से अब हमारी जीविका है।"[6]

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. कथा सागर सं.- संपादक डॉ. शाकीरा खानुम, ग्राम कहानी, ले.जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या-20
2. कथा सागर सं.- संपादक डॉ. शाकीरा खानुम, पृष्ठ संख्या-20
3. काव्य रंजन, संपादक- डॉ. शेखर, पृष्ठ संख्या -20
4. कथा सागर सं.- संपादक डॉ. शाकीरा खानुम, ग्राम कहानी–ले.जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या-21
5. कथा सागर सं.- संपादक डॉ. शाकीरा खानुम, ग्राम कहानी–ले.जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या-22
6. कथा सागर सं.- संपादक डॉ. शाकीरा खानुम, ग्राम कहानी–ले.जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या-23

युग प्रवर्तक साहित्यकार जयशंकर प्रसाद

श्री मारुति भीमण्णा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
के.एल.इ संस्था के श्री शिवयोगी मुरुघेन्द्र स्वामीजी
कला, विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय, अथणी
बेलगावी, कर्नाटका – 591309

शोध सार

महाकवि कथाकार नाटककार जयशंकर प्रसाद को कौन नहीं जानता। कक्षा पांचवी से लेकर 12वीं तक ग्रेजुएशन से लेकर पोस्ट ग्रेजुएशन तक हिंदी साहित्य में जयशंकर प्रसाद की रचनाएं देखने को मिलती हैं। जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय और रचनाएं ना केवल पढ़ने में सरल और सुलभ होती हैं बल्कि हमें यथार्थ ज्ञान और प्रेरणा भी देती है। छायावाद के कवि जयशंकर प्रसाद रचना को अपनी साधना समझते थे। वह उपन्यास को ऐसे लिखते थे मानो जैसे वह उसे पूजते हो। जयशंकर प्रसाद जी के बारे में अभी बातें खत्म नहीं हुई है उनकी कई सारी कविताएं कहानियां है जो आपको यथार्थ का भाव कराएंगी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिन्दी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं; नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है।

छायावादी कवि, युग - प्रवर्तक साहित्यकार, बहुमुखी प्रतिभा संपन्न जयशंकर प्रसाद का जन्म ३० जनवरी 1890 को काशी के गोवर्धनसराय में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी भी दान देने के साथ-साथ कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे।

जीवन के प्रति आशावाद

प्रसाद के काव्य में जीवन के प्रति आशावादी चिंतन प्रमुखता से अभिव्यक्त हुआ है -

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात ;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।
जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल ;
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।

अरे मनु! जगत् की विषमता से पीड़ित होकर तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि सृष्टि का यही क्रम है . जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् नवीन प्रभात का उदय होता है। उसी प्रकार दुःख के समय के बाद व्यक्ति के जीवन में सुख का आगमन होता है . जिस प्रकार यह आकाश अपने नीलावरण में प्रभात के स्वरूप को छिपाये रहता है, उसी प्रकार दुःख भी अपनी कालिमा के आवरण में सुखमय शरीर को छिपाये रहता है . भाव यह है कि प्रत्येक दुःख के बाद सुख का आगमन अवश्यम्भावी है . श्रद्धा पुनः कहती है कि हे मनु, जिस दुःख को तुम अपने जीवन का अभिशाप और संसार के समस्त कष्टों का मूल समझते हो, तो तुम्हें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वही दुःख परम शक्ति द्वारा प्रदत्त एक रहस्यमय वरदान भी है.

जीवन का विषमता और समरसता

प्रसाद जीवन की विषमता में भी सामरस्य को देखते हैं। कामायनी में वे लिखते हैं --

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुःख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान!

अरे मनु! यह अखिल विश्व दुःख के सुख वैषम्य की पीड़ा से व्यस्त होकर गतिमय हो रहा है. विकास के सत्य का वैषम्य ही दुःख - सुख को सम्भूत करता है और यही दुःख-सुख विराट् चितिशक्ति द्वारा प्रदत्त मधुर दान है . भाव यह है कि इस विकसनशील संसार की स्थिति गतिशील बनी रहती है . अतएव इसकी परिवर्तनशील प्रवृत्ति में दुःख और दुःख और सुख की विषम स्थिति बनी रहती है. वैषम्य की यह स्थिति परम् शक्ति भूमा की ही देन है . सुख के समरसता (आनन्द की स्थिति) का अधिकार समस्त व्यक्तियों का है, किन्तु व्यक्तिगत और सीमित सुखों की पूर्ति हेतु मानव सुख की खोज में लगा रहता है . सुख खोजने की उसकी यही सीमित लालसा वैषम्य की स्थिति का कारण बनती है . उसकी आकांक्षाएँ सागर की लहरों के समान आकर्षण के प्रति नित्य ही उमड़ती रहती हैं . उसकी इच्छा और आकांक्षाएँ उसी प्रकार आकर्षण से आबद्ध होती रहती हैं जिस प्रकार सागर की नीली लहरों के बीच सुख रूपी मणियों का समूह द्युतिमान होकर आकर्षक बना रहता है . जब तक मनुष्य समरसता की स्थिति को प्राप्त नहीं होता, वैषम्य की यह स्थिति निर्बाध बनी रहती है .

विषमता और समरसता - जगत् की गतिशीलता में क्षणिकता देखते हुए दुःख की व्यापकता एवं मरणशीलता का ही दर्शन करना तथा खण्डित जीवन पद्धति को अपने सीमित सुखों में बाँध देना ही विषमता है . ' समरसता ' वह अवस्था होती है जिसमें सुख - दुःख, पाप - पुण्य सभी तन्मय हुए आनन्द तत्व में विलीन दिखाई देते हैं . इस स्थिति में किसी प्रकार की सुख - दुःखानुभूति नहीं होती . परमार्थ सत्ता की पवित्र व्यापकता एवं आनन्द - सागर की हिलोरों में निमग्नता का अनुभव सामरस्य स्थिति को प्राप्त हुआ व्यक्ति करता है .

देशप्रेम और आजाद बनकर जीने की प्रेरणा

प्रसाद का साहित्य भारत की परतंत्रता से आहत समाज की अनुगूँज अभिव्यक्त करता है। उनकी कविताओं और गीतों में राष्ट्र प्रेम और स्वतंत्रता की भावना निरंतर अभिव्यक्त होती है।

हिमाद्रि तुंग श्रंग से ' कविता एक राष्ट्रीय गीत है! इस गीत में कवि देश वासियों को उत्साहपूर्वक आगे बढने की प्रेरणा देते हैं।स्वयं भारतमाता देशवासियों को आह्वान करते हिमालय की ऊँची चोटियों (शिखर) से इस प्रकार कह रही हैं " हे देशवासियो! तुम सब अमर वीर पुत्र हो! तुम को स्वयं सरस्वती और उज्वल प्रकाशवाली स्वतंत्रता

तुम्हें पुकार रही है।" हे देशवासियो! तुम अमरों की वीरधीर संतानें हो।तुम सब को प्रतिज्ञा करके वीर पथ पर आगे बढ़ना चाहिए।देश की उन्नति के लिए निरंतर बलिदान का समय आ गया है।वह पुण्य - मार्ग खुला है। स्वतंत्रता के लिए अपना बलिदान देने आगे बढो। असंख्य बढे चलो।यह एक स्वतंत्रता संग्राम का गीत है।कवि जयशंकर प्रसाद वतन के सोये लोगों को जगाते हैं।कहते हैं हे भारतवासियों! सूरज की असंख्य किरणें हिमालय से उतर रही हैं। ये किरणें इस देशवासियों के हृदयों में दिव्य प्रकाश उत्पन्न कर रही हैं।हे भारतमाता के सुपुत्रों! मातृ- भूमि के संतानों अब रुको नहीं।साहसपूर्वक आगे बढो।शूरता से लडकर शत्रु - सेना को चीर डालो! तुम वीर हो।सागर के वडवानल सा दुश्मनों को जला डालो! विजयी बनो।आगे बढो।बढते रहो।इस प्रकार कवि जयशंकर प्रसाद गुलामी से मुक्त होकर आजाद बनकर जीने की प्रेरणा देते हैं।

अतिथि सत्कार का महोन्नत उदाहरण

जयशंकर प्रसाद की कहानी ' शरणागत ' के अन्तर्गत सिपाही विद्रोह से भागे हुए, अंग्रेज शासक योरोपियन दम्पती विल्फर्ड और उसकी पत्नी एलिस द्वारा एक जमींदार किशोर सिंह की पत्नी सुकुमारी को यमुना में डूबने से बचाए जाने का रोचक वर्णन है। घटनाक्रम में विल्फर्ड और एलिस जमींदार के आग्रह पर उनके घर आतिथ्य स्वीकार करते हैं।परन्तु जमींदार के यहाँ आश्रय लिये हुए योरोपियन दम्पती सब प्रकार से सुख में रहने पर भी सिपाहियों का अत्याचार सुनकर शंकित रहते हैं।तभी पता चलता है कि किशोर सिंह के इलाके में स्थित सुन्दरपुर ग्राम को सिपाहियों ने लूट लिया है।विल्फर्ड और एलिस यह देखकर घबरा उठते हैं और कहते हैं, " ये सब अपने भाइयों को लूटते हैं ? " जब किशोर सिंह दुखी प्रजा को आश्वासन देते हैं कि उनके लिए खाने - पीने का प्रबन्ध उनकी ओर से किया जाएगा तब वे अंग्रेज दम्पती उनके पवित्र विचारों से प्रभावित होते हैं।जब भारत में शान्ति स्थापित हो जाती है तब विल्फर्ड और एलिस अपनी नील की कोठी पर वापस जाने लगते हैं।उस दिन बहुत देर तक एलिस किशोर सिंह के मकान से बाहर नहीं आती है।बहुत इन्तजार के बाद जब वह वापस आती है तो उसकी साज - सज्जा अद्भुत होती है।एलिस अपना गाउन नहीं पहने हुए है बल्कि रेशमी कपड़े का कामदार लहँगा और मखमल की कंचुकी, ऊपर से सितारों जड़ी रेशमी ओढ़नी।अधरों पर पान की लाली, आँखों में काजल की रेखा और चोटी भी फूलों से गुँथी।यही नहीं जब किशोर सिंह एलिस से कहते हैं कि आपके लिए घोड़ा तैयार है तब सुकुमारी बोल उठती है - नहीं, इनके लिए पालकी मँगा दो।आखिर वह उनकी शरणागत जो होती है।उन्होंने उसकी जान बचाई होती है।

प्रसाद के प्रेम और सौंदर्य के संबंधी विचार

प्रेम और सौन्दर्य- प्रसाद जी सौन्दर्य और प्रेम के कुशल चितेरे हैं। वे प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक पृष्ठभूमि से प्रारम्भ करते हैं। वह क्रमशः उठता हुआ अलौकिकता की सीमा तक पहुँच जाता है। आँसू उनका लौकिक प्रेम अलौकिकता का रूप धारण करके विश्वमंगल की कामना करने लगता है। उसकी समस्त विश्व वेदना से व्यथित दिखाई देने लगता है। प्रसाद जी प्रियतम के सौन्दर्य चित्र उतारते समय थकते नहीं हैं। उनका सौन्दर्य-वर्णन करने के लिए वे एक-एक सुन्दर उपमान ढूंढ़ लाते हैं।

"काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली।
मनिक मदिरा ने भर दी, किसने नीलम की प्याली।"

प्रसाद जी के काव्य में सौन्दर्य के स्थल जगह-जगह विद्यमान हैं। कामायनी में ही एक स्थान पर श्रद्धा का रुप अद्वितीय है-

और देखा वह सुन्दर दृश्य,
नयन का इन्द्रजाल अभिराम।
कुसुम वैभव में लता समान,
चन्द्रिका में लिया घनश्याम।।

प्रसाद जी ने प्रेमानुभूति में विरहानुभूति का भी पर्याप्त मात्रा में चित्रण किया है। प्रसाद जी के सौन्दर्यानुभूति में सर्वत्र सजीवता ही व्यक्त हुई है। अपनी सौन्दर्य उपासना के कारण उन्हें प्रलय की भीषण बेला में भी तरल-तिमिर' (तरल अंधकार) और 'प्रलय-पवन' (प्रलयकारी पवन) आलिंगन करते प्रतीत होते हैं।

निष्कर्ष

हमारे देश के सबसे बड़े कवियों में से एक जयशंकर प्रसाद जी की रचनाओं में मुख्य रूप से भावनात्मक, विचारात्मक, इतिवृत्तात्मक और चित्रात्मक भाषा शैली का प्रयोग देखने को मिलता है।इनकी शैली अत्यंत मीठी और सरल भाषा में थी जिनको कोई भी आसानी से पढ़ और समझ सकता था।

हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना का श्रेय जयशंकर प्रसाद को जाता है. इनके द्वारा रचित खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। जयशंकर प्रसाद के बाद के कई प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी लेखनी को खूब सराहा है। इसलिए इनको हिन्दी साहित्य जगत के युग प्रवर्तक कहा जाता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. कामायनी – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 33-38
2. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ- जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ संख्या 23-26
3. काव्य सरगम – सं. संतोष कुमार चतुर्वेदी

आधुनिक नारी का प्रतिबिंब : ध्रुवस्वामिनी

श्रीमती लता कुलकर्णी
हिंदी प्रवक्ता
जे.एस.एस. महाविद्यालय, धारवाड

शोध सार

'यत्र नारयस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता' ये पंक्तियाँ स्त्री की महानता को बिंबित करती हैं। स्त्री को पूजनीय स्थान पर, गरिमा के साथ रखा जाता है। स्त्री भी अपने स्थान, गरिमा व मर्यादा बनाए रखे तो उसका या उन पंक्तियों का सच्चा अर्थ होगा। आज की स्त्री और पहले की स्त्री में बहुत अंतर आ गया है। यह कह सकते हैं कि जमीन आसमान का अंतर आ गया है। स्त्री को ममता, वात्सल्य, सहानुभूति, सहायता, प्रेम, त्याग, स्नेह की साकार मूर्ति माना जाता है।

स्त्री इन गुणों को आत्मसात कर सुन्दर जीवन बसर करती है तो उसका मोल बढ जाता है। स्त्री को अपने आत्म सम्मान के साथ जीना भी जरूरी है। स्त्री को अपने भावों, विचारों के साथ समझौता करके अपने आत्मसम्मान को नकारना हो या छोडना हो कभी नहीं करना चाहिए। स्त्री को अपने आत्मसम्मान, अपनी जमीर खो लेगी तो उससे बडा कोई दूसरा ग्लानी शायद ही न हो। प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' की नायिका अपने आत्म सम्मान के साथ ही चलती है।

विषय प्रवेश

ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रसिद्ध जयशंकर प्रसाद की रचनाओं के वर्णन करने में शब्दों की कमी महसूस होती है। प्रसाद के व्यक्तिगत जीवन की गरिमा, अध्ययन चिंतन एवं उदात्त विचारों की सफल अभिव्यक्ति उनके समग्र साहित्य में हुई है, जिसमें भारतीयता के खग का स्वर कुल-कुल और सरिता के कल-कल ध्वनि सर्वत्र विद्यमान है। प्रसाद के साहित्य में भारतीयता का अंकन फूट फूटकर भरा हुआ है। प्रसाद के विचार धारा में देखते हैं तो स्त्री की गरिमामय उदात्त और सनातन सौंदर्य का फुट मिलता है।

विषय विश्लेषण

ऐतिहासिक कथावस्तु को इस नाटक में प्रस्तुत कर प्रसाद जी जीवन के नवीन और प्राचीन के बीच कुछ इस प्रकार समझौता किया है कि भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता को पुनर्जीवित हो। प्रसाद की विशेषता यही है कि ऐतिहासिक पात्रों को ऐसे सृष्टी करते हैं कि पूरा परिवेश ही सजीव होकर हमारे सामने उपस्थित हो उठता है। प्रसाद जी चुनकर ध्रुवदेवी का नाम आदरसूचक सार्थक नाम व शीर्षक ध्रुवस्वामिनी दिए हैं। शीर्षक देने में भी इतना आदर देनेवाले प्रसाद जी नाटक में भी ध्रुवस्वामिनी को उसी उत्कर्ष व उत्साहपूर्वक प्रस्तुत किए हैं। प्रसाद जी की यही व्यावहारिक पक्ष पाठकों को आकर्षित करता है।

यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है। गुप्त साम्राज्य का प्रमुख सम्राट चंद्रगुप्त के संदर्भ को यहाँ अंकित किया गया है। प्रथम अंक में ध्रुवस्वामिनी और खड़गधारिणी का संघर्ष चित्रित किया गया है। यह संघर्ष ध्रुवस्वामिनी का आंतरिक और बाह्य संघर्ष का प्रतीक है। ध्रुवस्वामिनी के विचारों से पता चलता है कि वह रामगुप्त से घृणा करती है, और मन से उसे अभी तक स्वामी के रूप में स्वीकारा नहीं है। उसके मन में चंद्रगुप्त के प्रति प्रेम भाव है। अपने

मन की प्रेमाभिव्यक्ति के विचारों को वह व्यक्त की है। इस प्रथम अंक में ध्रुवस्वामिनी के मानसिक व बाह्य अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है। खासकर ध्रुवस्वामिनी का मानसिक अंतर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है।

दूसरे अंक में शकराज ध्रुवस्वामिनी को प्राप्त करने के आतुरता में है। शकराज अपनी पत्नी कोमा के प्रति भी वह सोचता नहीं और ध्रुवस्वामिनी को भोग-विलास की वस्तु के समान देखता है। इस अंक में स्त्री की हीन स्थिति का पता चलता है। डरपोक रामगुप्त शकराज के सभी शर्तों को मानकर अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को उसके अधीन सौंप देता है। स्त्री सौदा करनेवाली वस्तु के समान है। न उसकी इच्छाओं का आदर है न सम्मान। चंद्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी को इस सौदे का शिकार होने नहीं देता और धीरता से शकराज से लडाई कर युद्ध जीत लेता है। सामंत कुमार व सभी लोग उन दोनों की जय जयकार करते हैं। तीसरे अंक में, रामगुप्त भी वहाँ आ जाता है। चंद्रगुप्त व रामगुप्त में बातों का संघर्ष चलता है। रामगुप्त चंद्रगुप्त को बंदी बनाने को कहता है। तब तक आचार्य अभी चंद्रगुप्त को राज के रूप में और ध्रुवस्वामिनी को रानी के रूप में स्वीकार लेते हैं। चंद्रगुप्त पर रामगुप्त हमला करने की कोशिश कर असफल होता है। सामंत कुमार रामगुप्त पर प्रहार करता है, चंद्रगुप्त को बचाता है। चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के जय-जयकार के साथ नाटक अंत होता है।

प्रसादजी को नारी की सामाजिक स्थिति की समस्या ने शायद प्रभावित किया है, जो ध्रुवस्वामिनी की रचना कर पाए। इस नाटक में आधुनिक नारी की कई समस्याओं को चित्रित ही नहीं किया बल्कि समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। नारी मन की मनोभाव ध्रुवस्वामिनी के द्वारा अभिव्यक्त करते हुए देश के गौरवशाली अतीत को व्यक्त किए है। इस नाटक में युगों से चली आ रही धारणा नारी पुरूष के लिए ही है, इसे ध्रुवस्वामिनी के द्वारा भंग होते हुए देख सकते हैं। रामगुप्त छल-कपट के द्वारा बलपूर्वक उससे शादी करता है। उसके मन में पत्नी के प्रति सहज प्रेम, स्नेह, सम्मान नहीं है। इसलिए वह भी उससे घृणा करती है। रामगुप्त इतना डरपोक, नपुसंक है कि ध्रुवस्वामिनी को शकराज के शर्तों के मुताबिक सौंपने का निर्णय करता है। ध्रुवस्वामिनी निवेदन करने पर भी, गिडगिडाने पर भी रामगुप्त सुनता नहीं। यहाँ तक कि वह अपने आपको पति रामगुप्त को सौंपने को तैयार होती है। जहाँ स्त्री को आत्मसम्मान आत्म गौरव की कदर ही नहीं वहाँ भी स्त्री कलंकित होने से झुक जाना चाहती है किंतु उसका मन रामगुप्त नहीं रखता है। ध्रुवस्वामिनी आक्रोश व आवेश में आकर कहती है, "पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल को मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी"। [१]

पुरूष हमेशा से ही अपने संकुचित सोच के कारण स्त्री को पशु तुल्य मानता है मन माना शोषण भी करता है। किंतु आज की नारी इसे सहन न कर पाएगी, आवाज उठाएगी, विरोध करेगी। ध्रुवस्वामिनी भी पति से रक्षा न मिलने पर खुद रक्षा कर लेने की बात करती है। एक प्रकार से प्रसादजी नारी उत्थान की समस्या को अधिकांशत: हल करने की कोशिश किए हैं। पुरूष की क्रूरता एवं बर्बरता, शोषण से नारी के मोक्ष की गाथा सुनाए हैं। साथ ही धर्मशास्त्र का आधार लेकर नारी के पुनर्विवाह की सुविधा अभिव्यक्त किए हैं। अनमेल-बेमेल विवाह का विरोध करते नारी को खुलकर, इच्छानुसार संबंध विच्छेद करने की भी अनुमति व्यक्त किए हैं। जहाँ पति डरपोक, कायर, नपुसंक, अयोग्य व आचरण से पतित है, पत्नी को सौदा करने की वस्तु समझता हो उसे विच्छेदित करने पर गलत नहीं है। प्यार, वात्सल्य, मधुर, त्याग, विनीत, दृढ, विवेकी, उत्साही तेजस्वी, अटल प्रतिभा गुण से संपन्न है ध्रुवस्वामिनी। यह कभी विषम-कठिण परिस्थितियों से घबरानेवाली नहीं है, बल्कि डटकर सामना करती है।

निष्कर्ष

इस तरह नारी जीवन की समस्याओं को उजागर कर प्रसाद जी नारी मन को जागृत किए हैं। यहाँ ध्रुवस्वामिनी आधुनिक नारी बनकर सामने आयी है। भारतीय नारी के सच्चे आदर्श को स्थापित करती है। वह जीवन के समतल में अमृत की धारा की तरह प्रवाहित होती है तथा पुरूषों को श्रेष्ठ कार्य के लिए प्रेरणा देती है।

नारी समस्या पर केंद्रित इस नाटक का सृजन सहृदयी नाटककार प्रसाद जैसे महान साहित्यकार ही उसे एक रूप दे सकते हैं। द्रवित मन के प्रसाद अतीत के पट पर वर्तमान नारी की समस्या के समाधान हेतु तत्पर होकर ध्रुवस्वामिनी की रचना किए हैं। ऐसे महान साहित्यकार को शत शत प्रणाम !!

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद : जनभारती प्रकाशन : पृ.सं. २५
2. आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का समाजशास्त्रीय अध्ययन : डॉ. विश्वबंधु शर्मा, सद्भावना प्रकाशन।
3. स्त्री प्रश्न : नमिता सिंह : विनय प्रकाशन, कानपुर।
4. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी : सविता मसीहा : शुभम पब्लिकेशनस, कानपुर।
5. हिन्दी नाटक : बच्चन सिंह : विनय प्रकाशन।

जयशंकर प्रसाद की उपन्यासों में स्त्री विमर्श

राहुल लक्ष्मण कासार
अतिथि प्राध्यापक
बि.एल.डि.इ.ए वाणिज्य, बि.एच.एस. कला और
टी.जी.पीविज्ञान महाविद्यालय, जमखंडी.

शोध सार

जयंशकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से एक हैं, जिनके साहित्य में भारतीय संस्कृति, जनचेतना, उदात्ता, मानव मूल्यों के प्रति चिंता एवं मनोभूमि के उतार-चढ़ाव का सजग अवगाहन मिलता है। युग के प्रति सजगता, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान का विश्लेषण, स्वच्छंदतावादी कलात्मक दृष्टिकोण, भावानुभूति, प्रकृति के प्रति अनुराग, भाषा की चारुता, शब्द -विन्यास की कोमलता, चितंन की तार्किकता और इन सबके ऊपर मानव चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परख इनकी शक्ति रही है। प्रसाद अपने युग के ऐसे प्रस्थान बिंदु पर खड़े हैं, जहाँ एक ओर उनकी दृष्टि प्राचीन भारतीय गौरव के महिमामंडित स्वरूप पर केंद्रित है तो दूसरी ओर भविष्य की चिंता से उद्वेलित भी है। वर्तमान की वेदना से उबरने का मार्ग तलाश करना इन चिंताओं के मूल में है। अतीत भावमुग्ध होने के लिए नहीं, बल्कि वर्तमान जड़ता को तोड़ने के लिए है; भविष्य की आशा निराधार कल्पना या शब्द विलास नहीं, वरन् कटु एवं असह्य वर्तमान की दिशा बदलने के लिए उठा वामन-चरण है। सामाजिक जीवन के लिए व्यक्तिगत सुख-साधनों का उत्सर्ग, उदात्त आदर्श की स्थापना के लिए संघर्ष, रुढ़ियों एवं आडंबरों के प्रति साहसपूर्ण प्रतिरोध एवं विद्रोह का स्वर इनकी सभी कृतियों में समाहित है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इनके लिए अतीतजीवी होना या घटनाओं और तिथियों का दोहराव नहीं, वरन् तात्कालिक आवश्यकता है, वर्तमान का उत्तर तलाशने की व्याकुलता है। इन्हें अतीत या अतीत के चित्र और चरित्र उतने ही स्वीकार्य हैं, जितने वे वर्तमान के निर्माण में सहायक हैं। अवरोधक बनी प्राचीन व्यवस्था या दम तोड़ती, प्रतिहिंसा जगाती किसी विचार-संस्कृति के प्रति कोई मोहजनित आग्रह नहीं है।

जयशंकर प्रसाद का संपूर्ण चिंतन एवं राग से जुड़ता हुआ चलता है| इनकी समस्या भावात्मक है, प्राकृतिक है, इस नाते जो साहित्य सृजित हुआ वह स्त्री और उनके साथ संचालित होते हुए संसार का है| भावनाओं का कोई प्रसंग स्त्री के बिना बढ़ नहीं सकता है| किंतु स्त्री अपने प्रसंग स्वयं बढ़ा सकती है, लेकिन स्वयं पुरुष के समर्थन के साथ चलना चाहती है| यह उसकी कमजोरी माना जाय या विवशता महानता इन्ही के चलते वह कितना पीस जाती है, इसका कोई हिसाब नहीं | यह और बात है कि पुरुष अपनी निजी प्रतिष्ठा में जीता हुआ मर्यादा के केचली में पड़ा हुआ स्वार्थ के नाबदन में रेंगता हुआ अपने को उज्जवल, पवित्रा एवं विवेकवान प्रमाणित करने के लिए स्त्री के संपूर्ण शरीर से गुजर जाता है और वह चुपचाप उसे देखती रह जाती है, स्त्री विरोध से अपनी यात्रा शुरू नहीं करती, बहुत दिनों के बाद अपना मार्ग बदल देती है, नदी की धारा की तरह पुरुष समाज थोड़ा शोर करके चुप हो जाता है और क्या कर सकता है |

भारतीय नारी के इस रूप को ही प्रसाद जी कल्याणकारी और मंगलमय समझते हैं| प्रसाद जी ने अपनी स्त्री विषयक कल्पना को तितली के रूप में साकार किया है| किंतु यह स्त्री ऐसी नहीं है, जो पति और गृहस्थी के

संकुचित घेरे में घिरी रहे, अपितु यह तो वह नारी है जो अपनी गृहस्थी को सुव्यवस्थित रुप से चलाते हुए समाज सेवा के लिए समय निकाल लेती है| उसके घर में समाज के त्यात्या बालकों का पालन-पोषण होता है| वह बालिकाओं को शिक्षा देती चलती है| शैला भी विवाह के पश्चात ग्राम सुधार का कार्य अपने पिता पर छोड़कर पति के साथ रहती है| किंतु गांव में उसका आना-जाना बना रहता है, तथा वह ग्राम सुधार में आर्थिक रूप से सहायता देती है| अतः तितली में प्रसाद जी ने नारी के घर और बाहर के कार्यों में पूर्ण सामंजस्य को दिखाया है| वहां विषमता नहीं है| तितलि और शैला के निर्माण में उन्होंने स्त्री के दो रूपों को तुलना की है- इसमें तितली का रूप अधिक निखर है| शैला दांपत्य जीवन के सफलता के लिए तितली से बहुत कुछसिखती की है और यदि इससे हम यह आशय निकाले कि भारतीय नारी नारी इस दिशा में पाश्चात्य की मार्गदर्शिका बन सकती है तो अनुचित न होगा।

'तितली' उपन्यास में प्रेम ही पात्रों का प्रधान प्रेरक तत्व रहा है और यह प्रेम भी त्याग से समन्वित एकनिष्ठ प्रेम है, मधुबन, तितली तथा इंद्रदेव और शैला प्रणयी युगल है| इन सभी पात्रों के चरित्र में भावुकता अधिक है| यद्यपि तितली के बाद के जीवन में उसके मेधावी रूप में भावुकता छिप जाती है| तितली ही उपन्यास के केंद्र बिंदु है| अतः इसमें नारी की महत्ता स्थापित की गई है।

"तितली" उपन्यास का संपूर्ण कथानक तितली और मधुबन तथा शैली और इंद्रदेव दो प्रणयी युगलों की कहानी से निर्मित है तितली और मधुबन में बाल स्नेहचर्या जनित प्रेम है। बचपन का वह यौवन के मादक क्षणों में कब प्रणय बनकर छा गया इसका उन दोनों को भी इसका ज्ञान नहीं किंतु अनुभवी तथा सहृदय बाबा रामनाथ को उनकी भावनाओं की गहराय़ी का ज्ञान है। वे यह सोचकर उसका ब्याह दूसरे से होने से वह बचेगी नहीं मधुबन से उसका ब्याज करा देते हैं कुछ ही दिन सुख और उल्लास से बीते कि निर्यात चक उन दोनों को 14 वर्ष की लंबी अवधि के लिए पृथक कर देता है और इसके पश्चात ही मधुबन के प्रति तितली का प्रगाढ प्रेम अपने चरमोत्कर्ष में उज्जवलता रूप में दिखाई देता है। वह गांव के भोली भाली तरुणी जिसने अभी तक भावों रागिन दुनिया ही देखी है और बचपन में होश संभालने से लेकर अब तक मधुबन का मधुर संभल जिनके साथ रहा था वह नियति के थपेड़ों से टकराकर चकनाचूर हो गया तो रामनाथ के सच्चे शिक्षा में पली यह भोली तरुणी एकदम कर्म क्षेत्र में कमर कस कर कुद पड़ती है, किंतु तनिक ध्यान देने पर उसकी यह असाधारण कर्मण्यता के पीछे जो भावना छिपी थी उसकी जो प्रेरक शक्ति बनी थी वह उसके ही शब्दों से भलीभांति पहचानी जा सकती है, विपत्तियों का पहाड़ टूटने पर वह केवल एक भावुक नारी की तरह वह मृत्यु की कामना नहीं करती वरण ऐसा सोचने पर राजू को उत्तर देती है – "मैं भी तुम्हारी ऐसी ही बात सोचकर छुट्टी पा जाती जीजी पर क्या करूं मैं वैसा नहीं कर सकती। मुझे तो उनके लौटने तक जीना होग।" और जो कुछ वह छोड़ गए हैं, उसे संभाल कर उनके सामने रख देना होगा कि इन्ही कुछ वाक्यों में जो छुपी हुई मनो भावना है यही उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। तितली उपन्यास की नायिका तितली का चरित्र आदर्श गुणों की खान ह। कभी किसी के सामने घुटने टेकने वाली स्त्री नहीं है तितली का चरित्र बहुत ही शक्तिशाली है वह पर्वत सी अटल सागर सी गंभीर और पृथ्वी के तरह सहिष्णु है तितली में प्रेम की एकनिष्टता की भावना भी है मधुबन की अनुपस्थिति में भी वह उसी स्मृति को सहेजे जीवन में कठोर कर्तव्य का निर्वाह किए चलती है मेरे जीवन का एक-एक कोना उसके लिए उस स्नेह के लिए संतुष्ट है |"

बिछड़ने के दुख और मिलने के धूमिल आशा ने ही उसे कठोर अध्यवसाय कठिन परिश्रमी कर्मण्य तथा अपूर्व साहसी बना दिया उसके प्रत्येक कार्य के पीछे प्रियतम की मधुर स्मृति, उसके प्रति दृढ़ विश्वास और त्याग की भावना छिपी हुई थी मधुबन को कैद से छुड़ाने के लिए न्यायालय का द्वारा खटखटाने का उसने कितना प्रयत्न किया? किंतु उसकी अपने स्वाभिमान के लिए इंद्रदेव (जमींदार) की वैधानिक सहायता निशुल्क लेने के लिए तैयार नहीं हुई, जिसके जमींदार में ही वह सर्वनाश के पथ पर धकेली गई थी। एक हाथ से लेकर दूसरे हाथ से देने वाली इंद्रदेव की यह उदारता वह स्वीकार न कर सकी उसने अपने विवेकशीलता का परिचय देते हुए अपनी भावनाओं

को नियंत्रित करके न कि अपने पति की संपत्ति के रक्षा की अपितु उसमें वृद्धि, उन्नति और विकास करने लगी उस्की सजीव स्मृति तथा उसके पुत्र मोहन को लेकर वह पति विछोह में निर्जिव नहीं बनी अपितु एक सच्ची कर्मयोगनी बन गई। किंतु यहां वह प्रेयसी नहीं एक अपूर्व जीवट वाली स्वाभिमानी पति में दुर्गा विश्वास और प्रगाढ प्रेम रखने वाली रूप और समाज की निस्वार्थ सेवा के आगे उदासीन क्षणों में ग्रामीण सेवा का साधन अपनाने वाली शैला भी अपने को तुच्छ समझती है, तितली का जीवन किसी सामाजिक आदर्श से प्रेरित नहीं अपितु प्रेम-प्रेरित है |

तितली को एक भावुक किंतु सजीव पत्र बन सकी है मधुबन का चरित्र सबसे अधिक स्वाभाविक और यथार्थ तो रूप में चित्रित हुआ है। वह अपने मानवोचित गुण-दुर्गण दुर्बलताओं तथा सफलताओं से युक्त एक साधारण मनुष्य है। स्वाभिमानी जमींदार के अत्याचारों का घोर विरोध करने वाला स्वावलंबी तथा शक्तिशाली युवक किंतु उसके स्वभाव में उत्तेजना अधिक है जीवन भर वह नियति के हाथ का खिलौना बना भाग्य का मारा दुःख और मानसिक द्वंद्व चलता है। उसके जीवन का संपूर्ण योगा कारावास में गुजर जाता है। अन्त में शरीर और मन से प्रांत थके हुए अपनी पत्नी द्वारा निर्मित प्रेम के उस निड बनजारीया में लौट जाता है, जिसका कण-कण तितली के श्वेत बिंदुओं से सींचा गया है और जिसे वह अपने प्रियतम के आगमन के आशा मैं सुरक्षित रखे थे। 14 वर्ष के पश्चात तितली और मधुबन का पुनर्मिलन हो जाता है |

तितली में प्रसाद की नारी विषयक भावना पूर्ण रूप से व्यक्त हुई है। प्रतीत होता है कि मुकुंदलाल के इन शब्दों ने प्रसाद के स्वर मिले हैं- "मैं तो गृहस्थ नारी के मंगलमयी कृति का भक्त हूं। वह एक साधारण सन्यासी भी दुष्कर और दम्भहीन उपासना है इसी कारण हम तितली को प्रेयसी से शीघ्र ही एक ग्रहस्थ नारी बनते हुए देखते हैं। उसके मंगलमय पत्नी का रूप आदि से अंत तक दिखता है। पति मधुबन से बिछुड़ जाने पर तो उसके द्वारा की गई दुष्कर और दम्भहीन उपासना नारी जीवन का यह आदेर्श है। नंदरानी के कंकाल उपन्यास की नायिका तारा भावनामयी रुप, यौवन और नारी के प्रेम करने वाले समर्पण सेल हृदय से संपूर्ण प्रियसी है अपने उद्धार करता मंगल से हृदय की समस्त कोमल अनुभूति के साथ वह प्रेम करती है अपने प्रणयी मंगल द्वारा कितने विषय परिस्थितियों में ठुकरायें जाने पर भी जीवन भर वह प्रणय की इस प्रथम अनुभूति को हृदय में छुपाते अपने प्रेमी के प्रति प्रतिक्षण सच्चे त्यागमयी पवित्र और सहनशील बनी रही कभी उसने मंगल को उसके कृत्यों के लिए उलाहना नहीं दिया। कोई शिकायत नहीं की और ना किसी पर उसके जीवन का यह रहस्य खोलकर उसे नतमस्तक करने का प्रयत्न किया। ऐसी अपूर्व प्रेयसी तारा पत्नी और मां बन कर भी ना बन सके और अंत में एक करुणामूर्ति बनकर रह गई अपने अंतर में एक प्रेमी हृदय और समर्पण शील स्वभाव को लेकर चलने वाली नारी को समाज का यही पुरस्कार था |

मंगल भी प्रारंभ में एक प्रणयी के रूप में दिखाई देता है किंतु बाद में उसका प्रेयसी के प्रति विश्वासघाती रूप सामने आता है। आगामी जीवन में वह एक का जीवन विशिष्ट कर उनके लोगों के जीवन सुधारने का कार्य करता है मान अपने पूर्व कर्म का प्रायश्चित कर रहा हो। उसमें समाज सेवक का रूप विकसित होता ह। उसके ये दो रूप देखकर तारा के ही भांति हम भी सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि वास्तव में मंगल पवित्रता और आलोक से गिरा हुआ पाप है कि दुर्बलताओं से लिपट हुआ एक दृढ सत्य है।" वास्तव में वह परिस्थितियों के थपेड़ों में झूलता एक भावुक व्यक्ति है जो अंत में कुछ दृढता प्राप्त कर लेता है |

"कंकाल" उपन्यास का ही एक पात्र विजय है जो अपने जीवन में तीन तीन नारियों के प्रति आकृष्ट होने वाला भावुक युवक है जिसने जमुना को अपने हृदय आराध्य बनाया किंतु उस ओर से निराश होकर वह अपने जीवन के उन मुक्तता में मुक्त स्वच्छंद घंटी को अपनी यौवनकाक्षाओं की पूर्ति का साधन बनाता है किंतु वह उसके हृदय से ऊपरी स्तर पर ही रही और उसके हृदय को यमुना के अतिरिक्त और कोई भी स्पर्श ना कर सकी और अंत में एक वन्य विहारिणी गुजर बाला की और आकर्षित होता है किंतु उसका सच्चा शुभचिंतक बनकर उसके भविष्य की भयंकरता को देखकर उसके मार्ग से अपने को हटा लेता है। प्रणय के क्षेत्र में वह एक विचित्र प्राणी है। प्रारंभ से

वह एक उच्छंखल युवक है। उसके प्रणय के प्रथम अनुभूति यमुना के प्रति अनुभव के जिसमें वासना का आवेग दिखाता है किंतु यमुना द्वारा प्रस्ताव ठुकराए जाने पर और उसके एक भाई के पवित्र प्रेम के मांग करने पर वह उसे बहन समझा हो या नहीं किंतु अब यमुना के प्रति उसके मन में वासनात्मक भाव नहीं रहे हैं यह स्पष्ट दिखाई देता है। वह उन्मुक्त युवक अपने वासनाओं का प्रभाव घंटी की ओर मोड़ देता है। किंतु उसके हृदय का सच्चा प्यार यमुना के प्रति ही बना रहता है वह उसका मुख आज्ञाकारी बन जाता है। उसके सचेत करने पर घंटी से विवाह नहीं करता और नवाब की हत्या करने के पश्चात इच्छा ना होते हुए भी उसी के आग्रह से भाग जाता है। अंत में तो उस पर यह प्रकट हो जाता है कि एक प्रकार से वह उसके बहन ही है और वे दोनों भाई-बहन के पवित्र प्यार में बंदे दिखते हैं। वह उत्कृष्ट नास्तिक युवक अपने अंतिम सांसों में ईश्वर का अनुग्रह स्वीकार करता है। इस प्रकार विजय अपने स्वतंत्र का प्रतीक है जो स्वच्छंदता को उशृंखलता की ओर ले जाता है। जो सामाजिक नियमों का उल्लंघन और ध्वंस करता है किंतु कोई नवनिर्माण नहीं विजय कि केवल विध्वंस ही करता रहा जीवन के लिए कोई नया मार्ग के उसने नहीं खोजा और इसलिए वह उद्देश्य ही भटकता हुआ करुण अंत को प्राप्त करता है। समाज ने उसके साथ कोई सहानुभूति प्रगट नहीं की ना उसने समझ के साथ कोई समझौता किया गाला की कथा के माध्यम से अवश्य यथार्थ जीवन से परे एक काल्पनिक सौंदर्य के प्रति की गई है जिसमें वन्यश्री की शोभा है और गाला के वन्य जीवन का स्वाभाविक चित्रण है। चारों ओर पशु-पक्षीयों से घिरी वह गुर्जन वाला संवाद के गुण-दोषों से दूर प्रकृति में पली-बढ़ी बालिका है। गाला के कथा ना केवल गाला की प्रणय कहानी है अपितु बड़ी कुशलता से इसमें गाला के मां तथा उसके नानी के प्रणय कहानियां जोड़ दिए गए हैं |

घंटे के माध्यम से भी एक मुक्त, स्वचंदा काल्पनिक तरुणी के प्रणय कथा निर्मित हो रही थी तभी परिस्थितिवश वह समाज की विधवा जीवन की एक समस्या बनकर रह गई। साथ ही अपनी उच्छंखलता को पहुंची उन्मुक्तता को कारण प्रणय के स्तर से कुछ नीचे गिरे गयी हैं, किसी तरुणी विधवा में ऐसा विनोदी, सरस तथा निःसंकोच मुक्त स्वभाव नही देखा जाता |

निष्कर्ष : -

प्रसाद जी स्त्री के हृदय को स्नेह और सम्मान से पूर्ण रूप से विभूषित श्रद्धा तथा उसके हृदय को कोमलता का पालना, दया का उद्गम, शीतलता की छाया और अनन्य भक्ति का आदर्श मानते है। उन्होंने कोमल अंगों वाली स्त्री को ओजमयी शक्ति स्वरूप के रूप में स्वीकार किया है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. जयशंकर प्रसाद कंकाल उपन्यास
2. जयशंकर उपन्यास तितली उपन्यास
3. विमल डॉक्टर गौरीशंकर रामप्रसाद के साहित्य के उधर तत्व
4. डॉ भगवती शरण मिश्रा हिंदी के चर्चित उपन्यासकार

कहानीकार जयशंकर प्रसाद का कला पक्ष

डॉ. प्रवीण एम. आनंदकंदा
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, फर्स्ट ग्रेड महाविद्यालय
अल्नावर - ५८११०३

शोध सार

जयंशकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से एक हैं, जिनके साहित्य में भारतीय संस्कृति, जनचेतना, उदात्ता, मानव मूल्यों के प्रति चिंता एवं मनोभूमि के उतार-चढ़ाव का सजग अवगाहन मिलता है। युग के प्रति सजगता, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान का विश्लेषण, स्वच्छंदतावादी कलात्मक दृष्टिकोण, भावानुभूति, प्रकृति के प्रति अनुराग, भाषा की चारुता, शब्द -विन्यास की कोमलता, चितंन की तार्किकता और इन सबके ऊपर मानव चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परख इनकी शक्ति रही है। प्रसाद अपने युग के ऐसे प्रस्थान बिंदु पर खड़े हैं, जहाँ एक ओर उनकी दृष्टि प्राचीन भारतीय गौरव के महिमामंडित स्वरूप पर केंद्रित है तो दूसरी ओर भविष्य की चिंता से उद्वेलित भी है। वर्तमान की वेदना से उबरने का मार्ग तलाश करना इन चिंताओं के मूल में है। अतीत भावमुग्ध होने के लिए नहीं, बल्कि वर्तमान जड़ता को तोड़ने के लिए है; भविष्य की आशा निराधार कल्पना या शब्द विलास नहीं, वरन् कटु एवं असह्य वर्तमान की दिशा बदलने के लिए उठा वामन-चरण है। सामाजिक जीवन के लिए व्यक्तिगत सुख-साधनों का उत्सर्ग, उदात्त आदर्श की स्थापना के लिए संघर्ष, रुढ़ियों एवं आडंबरों के प्रति साहसपूर्ण प्रतिरोध एवं विद्रोह का स्वर इनकी सभी कृतियों में समाहित है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इनके लिए अतीतजीवी होना या घटनाओं और तिथियों का दोहराव नहीं, वरन् तात्कालिक आवश्यकता है, वर्तमान का उत्तर तलाशने की व्याकुलता है। इन्हें अतीत या अतीत के चित्र और चरित्र उतने ही स्वीकार्य हैं, जितने वे वर्तमान के निर्माण में सहायक हैं। अवरोधक बनी प्राचीन व्यवस्था या दम तोड़ती, प्रतिहिंसा जगाती किसी विचार-संस्कृति के प्रति कोई मोहजनित आग्रह नहीं है।

हिन्दी साहित्य के अमर कथाकारों में जयशंकर प्रसाद अग्रणी हैं। जयशंकर प्रसाद को अक्सर नाटकों और निबन्धों के लिए पहचाना जाता है। लेकिन उनकी कहानियाँ जुड़ा भी अस्तित्वबोध की अभिव्यक्ति है। क्योंकि एक तरफ प्रेमचन्द कहानियाँ लिख रहे थे दूसरी तरफ प्रसाद। दोनों दो बिन्दुओं के कहानीकार हैं। एक स्तर पर आकर प्रेमचन्द समझौतावादी कहानीकार हो जाते हैं। उनका आदर्श यथार्थ में और यथार्थ आदर्श में तब्दील होने लगता है लेकिन प्रसाद अपनी आरम्भिक कहानी 'ग्राम' से लेकर अंतिम कहानी 'सालवती' तक समझौतावादी नहीं होते। चाहे वे प्रसाद की कहानियों का भाव पक्ष हो या कला पक्ष। उनकी कहानियों तक पहुँचने के लिए पाठक को एक सूक्ष्म दृष्टि से जिरह करना आवश्यक है। तभी वे प्रसाद की श्रमपूर्ण कहानियों से जद्दोजहद कर सकते हैं। कहानी आलोचक विनोदशंकर व्यासऐसा मानते हैं कि प्रसाद की कहानियाँ भावात्मक अधिक है जिस कारण से उनकी कहानियों को कहानी कला पर कसना कठिन है। " प्रसाद जी ने किसी उदेश्य अथवा प्रोपेगैंडा के लिए कहानियां नहीं लिखी हैं। उनके मन में भावनाएं उठीं और उन्होंने कहानियां लिखीं। उनकी अधिकांश कहानियां भावात्मक हैं। भावात्मक कहानियों को कहानी-कला की कसौटी पर कसना कठिन है। " [1]

अपनी बात के मन्तव्य को अभिव्यक्त करने के लिए वह प्रसाद की 'निरा' कहानी के संवाद को रेखांकित करते हैं–"जैसे एक साधारण आलोचक प्रत्येक लेखक से अपने मन की कहानी कहलाना चाहता है। और हठ करता है कि नहीं, यहां तो ऐसा न होना चाहिए था। " [2] लेकिन प्रसाद की जिस बात को उन्होंने उद्घाटित किया है उसका मन्तव्य उनके कहन से किसी भी प्रकार से तारतम्य लिए हुए नहीं हैक्योंकि प्रसाद का स्पष्ट मानना था कि लेखक को कभी भी आलोचकों के अनुरूप नहीं होना चाहिए बल्कि आलोचकों को लेखन के अनुरूप ढलना चाहिए इसी बात की व्यंजना उपर्युक्त कथन से होती है।

प्रसाद की कहानी कला पर भावनात्मकता को व्यंजित करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं - " प्रसाद की कहानियाँ कल्पना-प्रधान हैं और प्राकृतिक वातावरण का बड़ा सुन्दर उपयोग करती हैं। उनकी अधिकांश कहानियों की रंगभूमि प्रकृति केखुले प्रसार में हैं। उन्मुक्त वायुमंडल की विस्मयकारक और साहसिक घटनावली के बीच मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक चित्रण प्रसाद की कहानियों की विशेषता है। " [3] सत्यप्रकाश मिश्र लिखते हैं- "कहानियों में प्रसाद की कविताओं से पहले एक विशेष प्रकार का लोककथात्मक वैचित्र्य और भावोन्मुखता मिलती है। कथा का बाहरी ढाँचा विशेष भावनात्मक प्रवृत्ति या मन के विशेष आवेग, मानसिक उथल-पुथल के लिए प्रयुक्त किया हुआ लगता है। " [4] लेकिन जब प्रसाद की कहानियों और उपर्युक्त विद्वानों के कथन को आमने-सामने रखते हैं तो देखते हैं कि यह आलोचकीय विद्वानों की हठधर्मिता की अभिव्यक्ति हैक्योंकि प्रसाद की कहानियों में कल्पना प्रधान नहीं है बल्कि कल्पना का पुट है। कल्पना-प्रधान और पुट मेंअंतर है क्योंकि जब कथा की सहायता कल्पना अत्याधिक करती है तो वह प्रधान होती है और जब यथार्थ केन्द्र में होकर कथा का संप्रेषण करता है तो कल्पना किनारे पर होती है। न की केन्द्र में। रही बात भावनात्मकता की तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रसाद की कहानियों में भावना एक स्तर तक ही है। उन्होंने कभी भी कहानियों पर भावना को हावी नहीं होने दिया। उनकी कहानियों में निरन्तर यह बात मुखर होती है। इस बात को स्पष्ट समझने के लिए 'रसिया बालम' कहानी को देखा जा सकता है। जिसका कथानक केवल इतना है कि 'एक राजकुमारी से एक युवक प्रेम करता है। उसके दर्शन के लिए उसके द्वार के सम्मुख रहता है ताकि एक बार वे उसे निहार सके। अंतिम में अपने प्रेम की अभिव्यक्ति वे युवक राजकुमारी को करा देता है। राजकुमारी के पिता तो उस युवक को अपनी पुत्री के लिए स्वीकारने को तैयार होते हैं लेकिन महारानी एक अजीब शर्त रखती है। कहती है किमहल के पास एक झरना है और उसकेसमीप एक पहाड़ी है जिसे इस युवक कोपहाड़ी काटकर रास्ता बनाना है और केवल एक रात में उसे यह काम करना है। इस कठोर काम में युवक की मृत्यु हो जाती है। उस युवक के अंतिम शब्द हैं-"मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी निठुर हो। अस्तु; अब मैं यहीं रहूँगा; पर याद रखना; मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा, क्योंकि मैं तुम्हें नित्य देखना चाहता हूँ, और ऐसे स्थान में देखूँगा, जहाँ कभी पलक गिरती ही नहीं। " [5] इसी के बाद राजकुमारी भी अपना शरीर त्याग देती है। कथावस्तु इतनी ही है। इसी प्रकार 'तानसेन' और 'चंदा' इत्यादि कहानियाँ भी हैं।जो भावनात्मकता के प्रतीक नहीं हैं और न ही उसमें 'लोककथात्मक वैचित्र्य' है। जैसा उपर्युक्त आलोचकों ने माना है। बल्कि भावनात्मकता और लोककथात्मक वैचित्र्य से अधिक प्रसाद की कहानियाँ 'एक टीस' की कहानियाँ हैं। जो सामाजिक धरातल और यथार्थ के द्वंद्व से पनपी हैं न की लोककथाओं से।

प्रसाद की कहानियों के सौन्दर्यबोध को समझने के लिए उनकी कहानियों को तीन खंडों में विभाजित करना होगा।पहला प्रसाद की कहानियों का सामाजिक पक्ष, दूसरा ऐतिहासिक पक्ष और तीसरा स्त्री पक्ष। यह तीन खंड ही प्रसाद की कहानियों के चिन्तन के सौन्दर्यबोधिपन हैं।उनकी प्रथम कहानी 'ग्राम' अपने कलेवर की एक भिन्न कहानी हैं।भिन्न इस रूप में कि कथ्य और शिल्प आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ है। जहाँउस समय एक तरफ आदर्शवादी कहानियाँ लिखी जा रही थी। दूसरी तरफ प्रसाद इस कहानी के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर सामाजिक करुणा को रेखांकित कर रहे थे इसलिए सत्यप्रकाश मिश्रइस कहानी को कथ्य और शिल्प के प्रयोग की नवीनता के लिए आधुनिक कहते हैं। " ' ग्राम ' हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी है। क्योंकि शिल्प व अंतर्वस्तु

दोनों ही दृष्टियों से यह एक भिन्न पथ का संकेत करती है। " [6] इसके साथ ही ग्रामीण जीवन की बारीकियों को सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त कर रहे थे।सत्यप्रकाश मिश्र इस कहानी के सन्दर्भ में लिखते हैं - " उसमें एक विशेष प्रकार की आयरनी का संकेत है, जो उस युग के सामाजिक-राजनैतिक संकट और मानसिक उद्वेलन तथा वेदना को अनूठेपन के साथ नहीं: एक विशेष प्रकार की प्रश्नचिन्हात्मक मुद्रा के साथ अभिव्यक्त करता है। इस कहानी की अंतर्वस्तु में ग्रामीण समस्या का वह पहलू है, जिसकी ओर संकेत प्रसाद की किसी कहानी में नहीं हुआ है। " [7] मिश्र ठीक ही कहते हैं इस कहानी में एक तेज है जो बाहर और भीतर कीवेदना को अभिव्यक्त करता है।

प्रसाद समाज के दो वर्गों को भी निरन्तर देख रहे थे। एक पूंजीपति दूसरा श्रमिक वर्ग। बल्कि देख नहीं रहे थे श्रमिक वर्ग के भीतर पनपते आक्रोश को महसूस कर रहे थे। कार्ल मार्क्स अपने सम्पूर्ण चिन्तन में शोषक और शोषितों की निरन्तर बात करते हैं लेकिन प्रसाद इन दोनों के बीच संवाद को दिखाकर शोषितों के भीतर पनपते आक्रोश को व्यक्त करते हैं।'पत्थर की पुकार' कहानी का यह संवाद - " शिल्पी ने कफ निकालकर गला साफ करते हुए कहा- आप लोग अमीर आदमी हैं। अपनी कोमल श्रवणेन्द्रियों से पत्थर का रोना, लहरों का संगीत, पवन की हँसी इत्यादि कितनी सूक्ष्म बातें सुन लेते हैं, और उसकी पुकार में दत्तचित हो जाते हैं। करुणा से पुलकित होते हैं, किन्तु क्या कभी दु:खी हदय के नीरव क्रन्दन को भी अंतरात्मा की श्रवणेन्द्रित को सुनने देते हैं, जो करुणा का काल्पनिक नहीं किन्तु वास्तविक रूप है?"8 पात्र के माध्यम से इस बात को कहलाना इस ओर संकेत करता है कि समाज का एक वर्ग जिसको सबकुछ सुनाई देता है और महसूस होता है लेकिन गरीब और शोषित तबके की न उसे करुणा सुनाई देती हैं और न ही दर्द। इसी प्रकार की कहानियाँ 'चित्रवाले पत्थर', 'सन्देह' और 'परिवर्तन' हैं।

प्रसाद की 'मधुआ' कहानी की चर्चा काफी हुई है। क्योंकि एक तरफ सामंतवाद का खत्म होने का डर दूसरी ओर गरीबी का भयंकर चित्रण इसका मुख्य बिंदु है। इसके सन्दर्भ में प्रेमचन्द लिखते हैं-"प्रसाद जी ऐसी कहानी लिख सकेंगे, ऐसा मुझे विश्वास नहीं था। मैं उसे उनकी उत्कृष्ट रचना समझता हूँ। " [9] इसी सन्दर्भ में सत्यप्रकाश मिश्र ने लिखा है – " 'मधुआ' में ही प्रसाद अपनी और अपने समकालीन कहानी दृष्टि पर टिप्पणी भी करते हैं और पतनोन्मुख सामन्ती चरित्र तथा गरीबी के उस सम्बन्ध की ओर संकेत भी करते हैं, जिससे समाज की ऐतिहासिक स्थिति का उद्घाटन होता है और विद्रोह करने की इच्छा भी। शराबी और मधुआ दोनों का मत विद्रोह वैयक्तिक होते हुए भी लोकोन्मुख है। वर्ग सहानुभूति के माध्यम से जिस ओर इस कहानी में संकेत किया गया है। वह 'नियति' के उल्लेख के बाद भी महत्वपूर्ण है।" [10]

प्रसाद ने अस्मितामूलक कहानियों की भी रचना की है। जिसमें हाशिये के समाज को विषयवस्तु बनाया गया है। उनके छोटे-छोटे जीवनरंग को अभिव्यक्त किया गया है। जिसमें चूड़ीवाले, विसाती, दासियाँ, बनजारे, भिखारी इत्यादि की जीवनानुभूति को दर्शाया गया है। दलित समाज का अस्मिताबोध'विराम चिन्ह' कहानी में मुखर रूप से हुआ है।इस कहानी का प्लेटफार्म अछूतों के मन्दिर प्रवेश की समस्या पर आधारित है-"दूसरे दिन मन्दिर के द्वार पर भारी जमघट था। आस्तिक भक्तों का झुण्ड अपवित्रता से भगवान की रक्षा करने के लिए दृढ़ होकर खड़ा था। " [11] प्रसाद कुछ ही शब्दों में दलित और मुख्यधारा समाज के संघर्ष को दर्शा रहे थे। उनके एकजुट होने के संघर्ष पर बल दे रहे थे। इस बात को समझा रहे थे कि हाशिये के समाज को अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी अपने अधिकारों के लिए। इसी हाशिये के समाज की अभिव्यक्ति 'दुखिया', 'भिखारिन', 'दासी', 'बनजारा', 'सलीम', 'चूड़ीवाली' और 'घीसू' आदि कहानियाँ करती हैं।

व्यक्ति के मनोविश्लेषण और दमित इच्छाओं पर भी प्रसाद ने कहानियाँ लिखी हैं।फ्रायड ने 'इंटरप्रटेशन ऑफ़ ड्रीम' में जिन दमित इच्छाओं का बिम्बन किया है, इसी बिम्बन की अभिव्यक्ति प्रसाद की कुछ कहानियों में देखने को मिलती है। 'सुनहरा सांप' और 'प्रतिध्वनि' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इस सन्दर्भ में सत्यप्रकाश मिश्र लिखते हैं-"'सुनहरा सांप' में सांप काम भावना के प्रतीक रूप में प्रयुक्त है और कहानी को विशिष्टता प्रतीक के धन पक्ष की बजाय निषेधात्मक पक्ष से प्राप्त होती है। रामू के मालिक का गुस्सा नेरा के प्रति उसकी दमित इच्छा की अभिव्यक्ति

है, जो एक प्रकार का हिंसा(क्रोध) में परिणत होती है। " [12] इसी प्रकार की मानसिक अभिव्यक्ति 'स्वर्ग के खंडहर' कहानी में भी मुखर रूप में होती है। व्यक्ति के भीतर चेतन-अवचेतन में चलने वाले द्वंद्व को अभिव्यत किया गया है। जिसका विकसित रूप हिन्दी कहानियों में इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र की कहानियों में मिलता है।

प्रसाद ने ऐतिहासिक आवरण की कहानियाँ भी लिखी हैं लेकिन ऐतिहासिकता में वे तत्कालीन समाज की समस्याओं को पिरोकर कहानी में अभिव्यक्त करते हैं। एक ओर उनकी ऐतिहासिक कहानियों में भारतीय इतिहास के किसी एक गौरव का अंश, उसकी मर्यादा, भारतीय संस्कृति के रंग-रूप होते हैं तो दूसरी तरफ उन्हीं कहानियों के भीतर तत्कालीन किसी समस्या को दिखाकर एक सेतु का निर्माण करते हैं। जिससे ऐतिहासिकता और तात्कालिकता का संबंध बनता है। इस सन्दर्भ में उनकी कहानी 'ममता' को लिया जा सकता है। जो एक व्यक्तिव के साथ-साथ ऐतिहासिक सामाजिक सच्चाई को अभिव्यक्त करती है। इस सन्दर्भ में सत्यप्रकाश मिश्र ने लिखा है - " 'ममता' कहानी अपने अंत में वैयक्तिक कम ऐतिहासिक सामाजिक सच्चाई की ओर अधिक उन्मुख है, जो यह रेखांकित करती है कि जिस स्थान पर मानवीय की मूल्यवत्ता की दृष्टि से ममता का नाम होना चाहिए था वहाँ सत्ता प्रतिष्ठान के तर्क से शासक का नाम है अगर वहां ममता का नाम होता तो एक मूल्य की प्रतिष्ठा होती। जगह अशरण को शरण देने से नहीं हुमायूँ के कारण महत्वपूर्ण हुई। जमीन के खुदने का डर और अंतत: मौत 'ममत' को अधिक मानवीय और महत्वपूर्ण बना देती है। "[13] इसी ऐतिहासिक सन्दर्भ में तत्कालिक सामाजिक कलेवर की अभिव्यक्ति'तानसेन', 'सिकन्दर की शपथ', चित्तौर-उद्धार', 'अशोक', जहाँनारा' और 'गुदड़ी में लाल' आदि कहानियों में होती है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में स्त्री जीवन के विभिन्न आयाम अलग-अलग रूपों में आते हैं। प्रेमिका, मजदूर, रानी, सामन्त वर्ग, माँ, पुत्री और हिंसा- अहिंसा के प्रतिकार आदि रूपों में। स्त्री की हर छवि को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से उकेरा है। उनकी लगभग सभी कहानियों में किसी न किसी रूप में स्त्री की किसी न किसी छवि को रेखांकित किया गया है।' इन कहानियों में मुख्य रूप से चंदा', 'रसिया बालम', 'शरणागत', 'उस पार का योगी', 'कलावती की शिक्षा', 'देवदासी', 'बनजारा', 'नीरा', 'अनबोला', 'गुंडा' और 'सालवती'कहानियों को देख सकते हैं।

इसके साथ ही जयशंकर प्रसाद की कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जो किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती हैं अर्थात् उन कहानियों का अंत खुला हैं। पाठक अपने अनुसार समझ सकता है।जिसमें मुख्य रूप से 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'ममता', 'अपराधी', 'स्वर्ग के खंडहर' और 'बनजारा' इत्यादि कहानियों को लिया जा सकता है। इसी का विकसित रूप अज्ञेय की कहानियों का भी प्लेटफार्म भी बना है। लेकिन श्रीयुत कृष्णानन्द ने प्रसाद की कहानियों की कटु आलोचन की है। वे लिखते हैं - " उनकी अन्य अधिकांश कहानियों के सम्बन्ध में भी मेरी यही राय है। उनमें कहानी के आर्ट की बड़ी भारी कमी है। वे कहानियां नहीं हैं और कुछ भले ही हों। उनमें कथोपकथन और वर्णन की स्वाभाविकता नहीं। वाक्-संयम नहीं। घटना-चमत्कार नहीं। सरसता नहीं। " [14] दूसरी तरफ नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं - " प्रसाद की कहानियों में वातावरण का चित्रण विशुद्ध कहानी के लिए कुछ अधिक हो जाता है। उनमें वस्तु-अंकन की प्रवृत्ति अधिक है, जिसके कारण कहानियों की गति में किंचित शीतलता भी दिखाई पड़ती है। अतीत को सजीव करने की चिंता प्रसादजी को अधिक रहती है कदाचित् इसलिए संपूर्ण कहानी असाधारण काव्यत्व के साथ प्रस्तुत होती है। " [15] अब दोनों विद्वानों के कथनों को देखे तो पाते हैं कि वाजपेयी जी ने ठीक कहा है। प्रसाद की कहानियाँ गतिशील कम है, आराम से उन्हें समझना पड़ता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उनमें कहानीपन नहीं है बल्कि पाठक को धैर्य के साथ उनकी कहानियों को साधना पड़ता है। उनका अपना एक यूटोपिया है जिसमें जो प्रवेश कर सकता है वहीं उनकी कहानी के सौन्दर्यबोध का रसपान कर सकता है।

जयशंकर प्रसाद के पांच कहानी संग्रह है, 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाश-दीप, 'आंधी' और 'इंद्रजाल'। इन कहानी संग्रहों के नाम अनायास नहीं बल्कि सायास हैं। जो कहानी के माध्यम से प्रसाद के मन्तव्य को अभिव्यक्ति करते हैं।'छाया' कहानी संग्रह में मानवीय प्रेम, करुणा, ऐतिहासिकता के आवरण में वीरता और अहिंसा को मूल्य की कसौटी पर कसा गया है। इसके उपरांत 'प्रतिध्वनि' संग्रह में छायावादी मानवीकरण सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त होता है। सत्यप्रकाश मिश्र के शब्दों में कहें तो इसमें चिंतनशीलता, सूचनात्मकता और रिपोर्टिंग को व्यंजित किया गया है।"छाया की कहानियों के प्रवाह और आकर्षण की जगह इसमें एक प्रकार की चिन्तनशीलता, सूचनात्मकता और रिपोर्टिंग ने ली है। " [16] 'आकाशदीप' कहानी संग्रह की कहानियाँ मानवीय मन की जटिलताओं और अँधेरों की पहचान को उजागर करती हैं। मन की विचलित अभिव्यक्ति मुखर रूप से इस संग्रह की कहानियों में हुई है। आगे चलकर जिससे जिरह जैनेन्द्र करते हैं उसका बीजारोपण प्रसाद के इस संग्रह में है।इसके साथ ही धार्मिक रुढ़ियों पर भी वह प्रहार करते हुए चलते हैं। इसलिए सत्यप्रकाश मिश्र मानते हैं कि - " छायावाद की रहस्यात्मकता धर्म के कर्मकाण्ड को उद्घाटित करने में रूचि रखती है। जो सामन्तवाद की प्रमुख विचारधारा थी। प्रसाद धर्म के शोषण के प्रति प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक उद्घाटनशील हैं। " [17] इस संग्रह की कहानियों पर चिन्तन करते हुए ऐसा मानते हैं कि प्रसाद, प्रेमचन्द की तुलना में धार्मिक पाखंड को बहुत ही कटाक्ष रूप से अभिव्यंजित करते हैं। 'आंधी' संग्रह तक आते-आते प्रसाद ज्यादा विषय केन्द्रित यथार्थमुखी होने लगते हैं। इस सन्दर्भ में इस संग्रह की कहानियों के शीर्षक 'मधुआ', 'दासी', 'घिसू' और 'नीरा' को देख सकते हैं जो सामाजिक धरातल का यथार्थवादी नजरिया है। इसलिए सत्यप्रकाश मिश्र इस संग्रह के बारे में लिखते हैं - " आंधी संग्रह की अधिकांश कहानियों में सत्यग्रह युग की प्रतिध्वनि भी है। शराबखोरी की निंदा, परिश्रम की महत्ता, देशप्रेम, मानव सेवा, नारी सुधार आदि की चेतना 'व्रतभंग', 'विजय', 'पुरस्कार' आदि में है। " [18] प्रसाद का अंतिम कहानी संग्रह 'इंद्रजाल' में सामाजिक विषमता और विवशता पर आधारित कहानियाँ हैं। जो प्रसाद की मुखर अभिव्यक्ति को व्यंजित करती हैं और उनके कहानी सौन्दर्यबोधिपन की छटाओं को उजागर करती हैं।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. विनोदशंकर व्यास : 'प्रसाद की कहानियां', (सं. प्रमिला शर्मा), आयोग पुस्तक केन्द्र, गाजियाबाद, पृ. 313
2. वही, पृ. 313
3. नन्दुलारे वाजपेयी :जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. 26
4. सत्यप्रकाश मिश्र (सम्पादक): जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-2), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 7
5. वही, पृ. 23
6. वही, पृ. 8
7. वही, पृ. 8
8. वही, पृ. 93
9. विनोदशंकर व्यास : 'प्रसाद की कहानियां', (सं. प्रमिला शर्मा), आयोग पुस्तक केन्द्र, गाजियाबाद, पृ. 319
10. सत्यप्रकाश मिश्र(सम्पादक) : जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-2), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 14
11. वही, पृ.367
12. वही, पृ.12

13. वही, पृ.11
14. श्रीयुत कृष्णानन्द गुप्त : 'प्रसादजी की एक कहानी', प्रसाद सन्दर्भ, (सं. प्रमिला शर्मा), आयोग पुस्तक केन्द्र, गाजियाबाद, पृ. 312
15. नन्ददुलारे वाजपेयी :जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009, पृ. 26
16. सत्यप्रकाश मिश्र(सम्पादक) : जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-2), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 9
17. वही, पृ. 13
18. वही, पृ. 15

प्रसाद जी के नाटकों की मौलिक विशेषताएं

डॉ. मेहनाज़ बेगम डी सरखवास,
अधापिका, हिंदी विभाग,
सरकारी कला कालेज, बेंगलूरु-560001.

जयशंकर प्रसाद का जन्म 1890 ई. में काशी के 'सुंघनी साहू' नामक वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता देवी प्रसाद और पितामह शिवरत्न साहू थे। इनके पितामह शिवभक्त और दयालु थे। उनके पिता भी अत्यधिक उदार और साहित्य प्रेमी थे। प्रसाद का बचपन सुखमय था। पहले उनके पिता का और फिर 4वर्ष पश्चात उनकी माता का निधन हो गया। प्रसाद की शिक्षा दीक्षा और पालन-पोषण का प्रबंध उनके बड़े भाई संभू रत्न ने किया और क्वींस कॉलेज में उनका नाम लिखवाया, किंतु उनका मन वहां न लगा। उन्होंने अंग्रेजी और संस्कृत का अध्ययन स्वाध्याय से घर पर ही प्राप्त किया। उनमें बचपन से ही साहित्यानुराग था। वे साहित्यिक पुस्तकें पढ़ते और काव्य रचना करते रहे। पहले तो उनके भाई उनकी काव्य रचना में बाधा डालते रहे, परंतु जब उन्होंने देखा कि प्रसाद जी का मन काव्य रचना में अधिक लगता है, तब उन्होंने इसकी पूरी स्वतंत्रता उन्हें दे दी। प्रसाद जी स्वतंत्र रूप से काव्य रचना के मार्ग पर बढ़ने लगे। व्यापार भी नष्ट हो गया। पैतृक संपत्ति बेचने से कर्ज से मुक्ति तो मिली, पर वे क्षय रोग का शिकार होकर मात्र 47 वर्ष की आयु में 15 नवंबर, 1937 को इस संसार से विदा हो गए।

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के स्वनाम धन्य रत्न हैं। उन्होंने काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। 'कामायनी' जैसे विश्वस्तरीय महाकाव्य की रचना करके प्रसाद जी ने हिंदी साहित्य को अमर कर दिया। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई अद्वितीय रचनाओं का सृजन किया। नाटक के क्षेत्र में उनके अभिनव योगदान के फल स्वरुप नाटक विधा में 'प्रसाद युग' का सूत्रपात हुआ। काव्य के क्षेत्र में वे छायावादी काव्य धारा के प्रवर्तक कवि थे। उनकी प्रमुख कृतियां निम्नलिखित हैं-

काव्य- आंसू, कामायनी, चित्राधार, लहर और झरना। **कहानी-** आंधी, इंद्रजाल, छाया, आदि। **उपन्यास-** तितली, कंकाल और इरावती। **नाटक-**चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, जन्मेजय का नाग यज्ञ, विशाखा, ध्रुवस्वामिनी आदि। **निबंध-** काव्य कला एवं अन्य निबंध।

हिंदी साहित्य में स्थान

युग प्रवर्तक साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने गद्य और काव्य दोनों ही विधाओं में रचना करके हिंदी साहित्य को अत्यंत समृद्ध किया है। 'कामायनी' महाकाव्य उनकी कालजयी कृति है, जो आधुनिक काल की सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है। अपनी अनुभूति और गहन चिंतन को उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। हिंदी साहित्य में जयशंकर प्रसाद का स्थान सर्वोपरि है। रोमांटिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटकों का सृजन कर प्रसाद ने हिंदी नाटक को नई दिशा दी। इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी-नाट्यसाहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की। उनके लिए नाटक एक साहित्य विधा है।

प्रसाद जी ने अपने नाटकों में पात्रों का चरित्र चित्रण बड़ी सावधानी से गढ़ा है। उन्होंने इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों में नया जीवन भर दिया। पात्रों के मन का विश्लेषण बड़ी बुद्धिमत्ता से किया। नारी पात्रों में उनकी कल्पना और भावुकता का अधिक पुट है और उनका व्यक्तित्व अधिक औपन्यासिक और रोमांटिक है। उनके नाटकों की कथावस्तु में पर्याप्त नाटकीय तत्व मिलते हैं। प्रसाद के नाटकों में एक दोष यह भी माना जाता है कि उनमें पात्रों की बहुलता होती है। नाटक में ज़्यादा पात्र होने पर उनके निजस्व को चित्रित करना नाटककार के लिए मुश्किल हो

जाता है। हालाकि प्रसाद जी के नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक ज़रूर है, लेकिन कथा के केन्द्र में एक-दो पात्र ही होते हैं। फिर भी उनकी सफलता इस बात में है कि चरित्र छोटा हो या बड़ा उसकी विशिष्टता और महत्व को पूरी तरह से चित्रित करने में वे सफल होते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसादजी की एक महत्वपूर्ण अंतिम नाट्यकृति है। इसका प्रकाशन सन् 1933 ई. में हुआ था। इस नाटक में समुद्रगुप्त की मृत्यु एवं चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण के समय के मध्यवर्ती काल का चित्रण किया गया है। यद्यपि इस काल का घटना-व्यापार इतिहास में प्रायः लुप्त सा है, किंतु प्रसादजी ने निजी अध्ययन एवं तर्कयुक्त कल्पनाओं के आधार पर इस काल की कथावस्तु का संयोजन अपने इस अंतिम नाटक में किया है। ध्रुवस्वामिनी का कथानक इस प्रकार है।

गुप्त-काल के समुद्रगुप्त ने अपने दो पुत्रों रामगुप्त और चन्द्रगुप्त में से चंद्रगुप्त को ही साम्राज्य के भावी उत्तराधिकारी के रूप में चुना था। किंतु समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरांत चन्द्रगुप्त अपने भाई द्वारा फैलाये अनेक कुचक्रों में फँस गया। परिस्थितियों की प्रतिकूलता एवं अपनी उदारता के कारण चन्द्रगुप्त ने अपने समस्त अधिकार ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त को सौंप दिये। राज्याधिकार के इस षड्यंत्रकारी परिवर्तन के पीछे शिखरस्वामी का बहुत बड़ा हाथ था। विलासी रामगुप्त धन और शक्ति के लोभ के कारण राज दण्ड को प्राप्त कर लेता है, किंतु वह राज्य प्रशासन में सर्वथा असमर्थ है। वह स्वयं विलासिनी स्त्रियों के साहचर्य में व्यस्त रहता है। मद्य के सरोवर में आकण्ठ डूबा रहकर वह राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों को भुला बैठता है। इसका अनुचित लाभ उठाकर शिखरस्वामी संपूर्ण राज्यसूत्र अपने वश में कर लेता है। उधर दूसरी और रामगुप्त की अति विलासिता के कारण उनकी पत्नी ध्रुव देवी पूर्णतः उपेक्षित रहती है। एकांत उसे इतना अधिक असह्य हो जाता है कि वह बात-बात में झल्ला उठती है। प्रथम अंक में ही जब रामगुप्त ध्रुव देवी के कक्ष में आकर पहली बार उससे बातचीत करता है तो ध्रुवस्वामिनी का उत्तर उसके हृदय की खोज का स्पष्ट प्रमाण है-'इस प्रथम संभाषण के लिए मैं कृतज्ञ हुई महाराज! किंतु मैं भी यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-संप्रदाय से ही बड़ा हुआ है?' इतना ही नहीं, बेचारी ध्रुव देवी को कुबड़ों, बौनों और हिजड़ों के साथ रहना पड़ता है। अत: वह अपने वर्तमान पर दुःखी रहकर भविष्य के प्रति निरंतर चिंतित रहती है।

यों तो रामगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का विवाह धर्म और अग्नि की साक्षी में हुआ था, किंतु अपने तथाकथित पति रामगुप्त से उसे पति-सुख कभी प्राप्त न हो सका। वैसे भी रामगुप्त अपनी विलासी वृत्ति और क्रूरता के कारण ध्रुवस्वामिनी की घृणा का पात्र ही बन सका था। इन सबके अतिरिक्त वह नपुंसक और मूर्ख भी था। न उसे अपनी मर्यादा का विचार था और न कुल-गौरव की चिंता। इन सब कारणों से ध्रुवस्वामिनी मन ही मन अपनी मधुर भावना के आधार के रूप में अपनी पूर्व प्रेमी.चन्द्रगुप्त को ही चुनौती देती है और जब ध्रुवस्वामिनी को यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त भी उससे मौन प्रेम करता है, तब चन्द्रगुप्त के प्रति उसका आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है। दुष्ट रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी के हृदय की इन भावनाओं को जान लेता है और उस पर कड़ा नियंत्रण रखने लगता है। यह मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि बाधा पाकर प्रेम सदैव बढ़ता है और वैसे भी जब ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त की नपुंसकता और चन्द्रगुप्त की वीरता की तुलना करती है, तब चन्द्रगुप्त के प्रति उसका प्रेम चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

रामगुप्त राज्य प्रशासन में सर्वथा होने के कारण अपने पूर्ण अधिकार खो बैठता है। उसकी प्रशासन व्यवस्था में शिथिलता देखकर एक अन्य राजा शकराज उस पर आक्रमण कर देता है। रामगुप्त का दुर्ग शकराज के वीर सैनिकों द्वारा घेर लिया जाता है। जब रामगुप्त युद्ध को टालने के लिए शकराज से संधि की प्रार्थना करता है तो शकराज उसके बदले में ध्रुवस्वामिनी को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करता है। वह अपने सामंतकुमारों के लिए भी स्त्रियाँ माँगता है। इस अशिष्ट शर्त को सुनकर भी रामगुप्त का निर्लज्ज मन तनिक भी विचलित नहीं होता और वह अपने महामंत्री शिखरस्वामी की सम्मति से रामगुप्त की यह माँग स्वीकार करने का निश्चय कर लेता है। रामगुप्त के इस चरम पतन को देखकर ध्रुवस्वामिनी का हृदय घृणा से भर जाता है। वह रामगुप्त के पाँव पड़कर प्रार्थना करती है कि

वह उसे पर-पुरुष की अंक-शायिनी न बनने दे। किंतु रामगुप्त उसकी एक भी नहीं सुनता। ऐसे कठिन अवसर पर वीर चन्द्रगुप्त गुप्तकुल की मर्यादा की रक्षा के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होता है। परिस्थितियों की भयंकरता को देखते हुए वह निश्चय करता है कि स्त्री-वेश धारण-करके महादेवी ध्रुवस्वामिनी के रूप में शकराज के सामने स्वयं उपस्थित होकर वह इस बात का प्रयत्न करेगा कि सारा खेल ही उलट जाए। वह मन ही मन शकराज का वध करने का निश्चय कर लेता है। चन्द्रगुप्त के इस साहस को देखकर ध्रुवस्वामिनी उस पर और भी अधिक मुग्ध हो जाती है तथा उसके साथ शकराज के शिविर में चली जाती है। वहाँ चन्द्रगुप्त की तीव्र बुद्धि, व्यवहार कुशलता एंवं वीरता की विजय होती है। बर्बर शकराज चन्द्रगुप्त के हाथों मौत के घाट उतार दिया जाता है और उसकी आश्रयहीन सेना इधर-उधर भाग जाती है।

वीर चन्द्रगुप्त अपने पराक्रम और बुद्धिबल द्वारा सभी सामंतकुमारों का हृदय जीत लेता है। वे जब देखते हैं कि चन्द्रगुप्त में अपने स्वर्गीय पिता की भाँति राजा के सभी गुण विद्यमान हैं और सम्राट समुद्रगुप्त उसे ही उत्तराधिकारी के रूप में चुना था, तब वे एक स्वर से चन्द्रगुप्त को अपना सम्राट मान लेते हैं। ध्रुवस्वामिनी सारी सभा के समक्ष अपने अकाट्य तर्कों द्वारा रामगुप्त के राक्षस विवाह से मुक्ति प्राप्त कर लेती है। पुरोहित भी उसे चन्द्रगुप्त की पत्नी और महारानी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। स्थिति में यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर शिखरस्वामी आरंभ में तो कुछ विरोध करता है, किंतु परिस्थिति की प्रतिकूलता देखकर चुप हो जाता है। रामगुप्त पूर्णतया निराश होकर चन्द्रगुप्त पर पीछे से प्रहार करके बदला लेने की चेष्टा करता है। उसके इस दुष्कर्म पर क्रोधित होकर सामंतकुमार तुरंत उसका (रामगुप्त का) वध कर देते हैं। इस प्रकार चन्द्रगुप्त अपनी सच्चरित्रता, वीरता, व्यवहार कुशलता, बुद्धि प्रखरता और सभ्यता के बल पर अपनी प्रेयसी ध्रुवस्वामिनी के साथ निष्कंटक और लोकप्रिय राज्य भोगता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. ध्रुवस्वामिनी- जयशंकर प्रसाद- जनभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
2. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास- बाबू गुलाबराय-लक्ष्मी नारायण अग्रावाल, आगरा.
3. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास- राजनाथ शर्मा- विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.

प्रसाद जी के साहित्य का एक अध्ययन

श्रीमती राधिका जी
सहायक प्रोफेसर
ए आई बी एम, ए आई टी कैंपस
चिकमंगलूर-477 102

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889 - 15 नवंबर 1937) हिन्दी कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्ध-लेखक थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ीबोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के, प्रगतिशील एवं नयी कविता दोनों धाराओं के, प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि 'खड़ीबोली' हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

प्रसाद ने कविता ब्रजभाषा में आरम्भ की थी। उपलब्ध स्रोतों के आधार पर प्रसाद जी की पहली रचना 1901 ई॰ में लिखा गया एक सवैया छंद है, लेकिन उनकी प्रथम प्रकाशित कविता दूसरी है, जिसका प्रकाशन जुलाई 1906 में 'भारतेन्दु' में हुआ था।

प्रसाद जी ने जब लिखना शुरू किया उस समय भारतेन्दुयुगीन और द्विवेदीयुगीन काव्य-परंपराओं के अलावा श्रीधर पाठक की 'नयी चाल की कविताएँ भी थीं। प्रसाद के 'चित्राधार' में संकलित रचनाओं में इसके प्रभाव खोजे भी गये हैं और प्रमाणित भी किये जा सकते हैं। 1909 ई॰ में 'इन्दु' में उनका कविता संग्रह 'प्रेम-पथिक' प्रकाशित हुआ था। 'प्रेम-पथिक' पहले ब्रजभाषा में प्रकाशित हुआ था। बाद में इसका परिमार्जित और परिवर्धित संस्करण खड़ी बोली में नवंबर 1914 में 'प्रेम-पथ' नाम से और उसका अवशिष्ट अंश दिसंबर 1914 में 'चमेली' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। बाद में एकत्रित रूप से यह कविता 'प्रेम-पथिक' नाम से प्रसिद्ध हुई। **डॉ॰ सत्यप्रकाश मिश्र के अनुसार :** 'प्रेम-पथिक' का महत्त्व प्रसाद की व्यापक और उदार दृष्टि, सर्वभूत हित कामना, समता की इच्छा, प्रतिपद कल्याण करने का संकल्प, प्रकृति की गोद में सुख का स्वप्न आदि के बीजभाव के कारण तो है ही, प्रसाद ने प्रेम के अनुभूतिपरक अनेक रूपों का जो वर्णन किया है उसके कारण भी है।"1

कामायानी आधुनिक काल की बहुचर्चित काव्य के रूप में दिखाई पडता है। प्रसाद जी ने कामायानी में भारत के प्राचीन संस्कृति का वर्णन किया गया है। भारत के विविध परिस्थितियों का विवरण मनु और श्रध्दा पात्र के व्दारा प्रस्तुत किया गया है। यहाँ प्रसादजी श्रध्दा पात्र के व्दारा उद्घाटित होता है। अर्थात श्रध्दा की महत्वपूर्ण उक्तियाँ, कर्म, शील एवं उसका महत्व कामायानी में संदेश के रूप में प्रकट हुए है।

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभ माने जाते हैं। सन् 1912 ई. में 'इन्दु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उनके पाँच कहानी-संग्रहों में कुल मिलाकर सत्तर कहानियाँ संकलित हैं। 'चित्राधार' से संकलित 'उर्वशी' और 'बभ्रुवाहन' को मिलाकर उनकी कुल कहानियों की संख्या 72 बतला दी जाती है। यह 'उर्वशी' 'उर्वशी चम्पू' से भिन्न है, परन्तु ये दोनों रचनाएँ भी गद्य-पद्य मिश्रित भिन्न श्रेणी की रचनाएँ ही हैं। 'चित्राधार' में तो कथा-प्रबन्ध के रूप में पाँच और रचनाएँ भी संकलित हैं, जिनको मिलाकर कहानियों की कुल

संख्या 77 हो जाएँगी परंतु कुछ अंशों में कथा-तत्व से युक्त होने के बावजूद स्वयं जयशंकर प्रसाद की मान्यता के अनुसार ये रचनाएँ 'कहानी' विधा के अंतर्गत नहीं आती हैं। अतः उनकी कुल कहानियों की संख्या सत्तर है।

कहानी के सम्बन्ध में प्रसाद जी की अवधारणा का स्पष्ट संकेत उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'छाया' की भूमिका में मिल जाता है। 'छाया' नाम का स्पष्टीकरण देते हुए वे जो कुछ कहते हैं वह काफी हद तक 'कहानी' का परिभाषात्मक स्पष्टीकरण बन गया है। प्रसाद जी का मानना है कि छोटी-छोटी आख्यायिका में किसी घटना का पूर्ण चित्र नहीं खींचा जा सकता। परंतु, उसकी यह अपूर्णता कलात्मक रूप से उसकी सबलता ही बन जाती है क्योंकि वह मानव-हृदय को अर्थ के विभिन्न आयामों की ओर प्रेरित कर जाती है। प्रसाद जी के शब्दों में "...कल्पना के विस्तृत कानन में छोड़कर उसे घूमने का अवकाश देती है जिसमें पाठकों को विस्तृत आनन्द मिलता है।"2 'आनन्द' के साथ इस 'विस्तृत' विश्लेषण में निश्चय ही अर्थ की बहुआयामी छवि सन्निहित है; और इसीलिए छोटी कहानी भी केवल विनोद के लिए न होकर हृदय पर गम्भीर प्रभाव डालने वाली होती है। आज भी कहानी के सन्दर्भ में प्रसाद जी की इस अवधारणा की प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनी हुई है, बल्कि बढ़ी ही है।

जयशंकर प्रसाद जी के कहानिका एक उदाहरण उनकी गुंडा कहानी है। गुंडा हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में स्थान रखनेवाली कहानी है। इस कहानी की कथा वारणासी के परिवेश पर आधारित है।ईसा की अठारहवी शती के अंतिम भाग में समस्थ न्याय और बुध्दिवाद कोन शस्त्र-बल के समक्ष परास्त होते देख एक नवीन संप्रदाय की सृश्टाइ का प्रसाद जी ने उल्लेख किया है। जिन्हे काशी के लोग गुंडा कहते है। उनका धर्म वीरता था जिसका प्रदर्शन वेअन्याय, अत्याचार के विओरुध्द निर्बलों और असहायों की रक्षा के लिए था। इस कहानी के पात्र नन्हकू सिंह के द्वारा समाज सेवक गण का परिचय किये है। नन्हूक सिंह काशी के जमींदार निरंजन सिंह का वीर पुत्र है। जीवन की अलभ्य अभिलाषा के पूर्ण न होने पर वह मानसिक चोट से घायल हो जाता है, परंतु स्वाभिमान के साथ निर्भय होकर अपने साथियों को लेकर काशी की गलियों में घूमता रहता है। न्हूक के राजमाता पन्ना के प्रति मधुर संबंधों का पता चलता है. जो अपने पुत्र राजा चेतसिंह के साथ काशी के आतंकपूर्ण, भय और सन्नाटे के माहौल में कैद कर ली गई है। नन्हूक सिंह कभी भी राजमाता का ख्याल रखनेवाला था जब मंदिर से वापस आते समय नन्हूकू राजमाता से कहता है-"मलूकी! गाना जमाता नहीं है। उलाँकी पर बैठकर जाओ, दुलरी को बुला लाओ।"3 गुंडा बनकर जीनेवाला एक इनसान समाज के प्रति राजमाता के प्रति अपना चिंतन करता है। यही जयशंकर प्रसाद जी के विशेषता है।

सजग साहित्यकार प्रसाद जी ने इस कहानी के माध्यम से काशी के गुंडों की विशेषताओं को रेखांकित करने की कोशिश की है, जिनमें आजादी की ललक है, जो मानवीय भावनाओं से पूर्ण है।

कवि एवं नाटककार के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर अधिष्ठित होने के कारण प्रसाद जी की कहानियों पर लम्बे समय तक समीक्षकों ने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना कि अपेक्षित था; जबकि विजयमोहन सिंह के शब्दों में : "साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में समान प्रतिभा तथा क्षमता के साथ अधिकार रखने वाले प्रसाद जी ने सर्वाधिक प्रयोगात्मकता कहानी के क्षेत्र में ही प्रदर्शित की है। मुख्य रूप से उनके शिल्प प्रयोग विलक्षण हैं।"4

प्रसाद जी ने तीन उपन्यास लिखे हैं : कंकाल, तितली और इरावती (अपूर्ण)। 'कंकाल' के प्रकाशित होने पर प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों से नाराज रहने वाले प्रेमचन्द ने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की थी तथा इसकी समीक्षा करते हुए 'हंस' के नवंबर1930 के अंक में लिखा था -- 'कंकाल' में धर्मपीठों में धर्म के नाम पर होने वाले अनाचारों को अंकित किया गया है। उपन्यास में प्रसाद जी ने अपने को काशी तक ही सीमित न रखकर प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों को भी कथा के केंद्र में समेट लिया है।

"जयशंकर प्रसाद उस समाज का वास्तविक चित्र देते हैं, सारी नग्नता और विद्रूपता के साथ, जहाँ धर्म के नाम पर मनुष्य की हीन वृत्तियों का नंगा नाच होता है।... समाज और सम्प्रदाय कोई भी हो, स्त्री की नियति सब

कहीं हाशिए पर ही है और कुलीनता तथा पुरुष के वर्चस्ववादी अहंकार का शिकार उसी को होना है। लेकिन प्रसाद जी मनुष्य की संभावनाओं के प्रति कहीं भी उदासीन नहीं हैं।"5

निष्कर्ष में हम यह कह सकते है कि जयशंकर प्रसाद जी हिन्दी साहित्य के तारा लोक में चमकने वाला एक तारा है। इन्होंने हिन्दी साहित्य के हर एक विधा में अपना लेखन चलाए है। वे हिन्दी साहित्य में युग प्रवर्तक माना गया है। उन्होंने अपने रचनाओं के व्दारा समाज को मौल्य युक्त संदेश रवाना किए है। इनकी रचनाओं का प्रभाव पाठकों के जीवन पर बहुत गहराई से पडता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य, संपादन एवं भूमिका- डॉ॰ सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण-2008, पृष्ठ-23.
2. प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियाँ एवं निबन्ध, संपादन एवं भूमिका- डॉ॰ सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2009, पृष्ठ-8.
3. चित्तरंजन मिश्र, कथा भूमि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, चौदाहवी संस्करण 2017 पृष्ठ 45
4. विजयमोहन सिंह, समय और साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2012, पृष्ठ-9.
5. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-2008, पृष्ठ-54.

प्रसाद और कुवेंपु के साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

डॉ. मल्लिकार्जुनय्या जी एम
अतिथि प्रवक्ता
बी एल डी ई ए कॉलेज, जमखंडी

कुवेंपु और जयशंकर प्रसाद कन्नड और हिन्दी की दो ऐसी महान प्रतिभाएँ हैं जिन्होंने अपने साहित्य में चिरंतन मानवीय मूल्यों की स्थापना की है। ये दोनों कवि भिन्न भाषा, प्रदेश, जनपद तथा साहित्य- परम्परा से जुड़े रहने पर भी उनका सृजनात्मक धरातल एक-सा रहा है- वह है मानवीय धरातल । उनके समूचे साहित्य की आधारभूमि भारतीय संस्कृति रही है। दोनों ने उस भारतीय परम्परा को वाणी दी है जो अनन्त काल से अविकल रूप में अपनी अस्मिता को बनाये रखते हुए युगानुरूप नया-नया रूप धारण करती आयी है। इन्होंने भारत के गौरवमय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को अपने ही ढंग से चित्रित करके नयी प्राणप्रतिष्ठा की है। इन्होंने परम्परा को सिद्धवस्तु के रूप में नहीं अपितु एक गतिशील अखण्ड धारा के रूप में ग्रहण किया है जो भूत, वर्तमान और भविष्य के कृत्रिम बोध को तोडकर मानवजीवन को पूर्णिता की दिशा में मोड देती है । इस तरह दोनों ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और इतिहास का पुनरूज्जीवन ही नहीं किया बल्कि उस सबकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है। इतना ही नहीं इस सबके ऊपर उठकर इन्होंने विश्व मानवता के विशाल प्रांगण में विचरण किया है जहाँ मनुष्य समस्त संकीर्ण घेरों से बाहर निकल कर विशुद्ध मानव के रूप में खड़ा है। दोनों कलाकारों की रचनाओं के केन्द्र में यही मुक्त-पुरुष है।

आधुनिक कन्नड साहित्य के निर्माण में कुवेंपु की ऐतिहासिक भूमिका रही है। उसी तरह, आधुनिक हिन्दी साहित्य रूपायन करने में प्रसाद का प्रमुख पात्र रहा है । दोनों बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। दोनों साहित्य की हर विधा में सफल रचनाओं की सृष्टि की है। दोनों मुलतः कवि होने के साथ-साथ नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार तथा आलोचक हैं । कुवेंपु श्रेष्ठ जीवनीकार एवं सफल अनुवादक भी है । साहित्य के क्षेत्र में दोनों का आविर्भाव उस समय हुआ जब इन विधाओं का उतना विकास हो नहीं पाया था। दोनों ने अपनी लेखनी के जादूई स्पर्श से इन अविकसित विधाओं में नयी चेतना भर दी और उन्हें नया स्वरूप प्रदान किया। उम्र के हिसाब से प्रसाद कुवेंपु से बड़े हैं किन्तु बहुत ही कम उम्र में उनकी मृत्यु हुई । यह कन्नड भाषा का सौभाग्य है कि कुवेंपु ने लम्बी उम्र पायी है। सहज है कि प्रसाद से उनका साहित्य अधिक समृद्ध हो । प्रसाद का जन्म हुआ सन् 1890 में और कुवेंपु का सन् 1904 में । जिस समय प्रसाद ने हिन्दी में प्रौढ़ रचना की सृष्टि की थी उस समय कुवेंपु कन्नड साहित्य के क्षेत्र में अपनी आरंभिक रचनाओं को लेकर उपस्थित हुए थे। प्रसाद की प्रथम काव्य-रचना प्रकाशित हुई 1909 में, और कुवेंपु की 1930 में । प्रसाद स्वातंत्र्य पूर्व-युग में मात्र रहे हैं जब कि कुवेंपु स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर युग को जोड़ने वाले सेतुबन्ध के रूप में आज भी खडे है । काल की दृष्टि से प्रसाद और कुवेंपु में यह अन्तर लक्षित होने पर भी दोनों को एक साथ लेकर चलने के पीछे एक विशिष्ठ दृष्टिकोण रहा है-वह यह कि दोनों का सृजनात्मक धरातल एक-सा रहा है । सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक दृष्टि, राष्ट्रीय भावना, जीवनदर्शन, विश्वमानवता की परिकल्पना आदि की दृष्टि से दोनों में बहुत कुछ समानताएँ परिलक्षित हैं।

कवि कुवेंपु और कवि प्रसाद दोनों रोमांटिक भावधारा के कवि हैं । प्रकृति और प्रेम के अनन्य उपासक हैं। प्रसाद की प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं - कानन, कुसुम, प्रेम पथिक, करुणालय, झरना, आँसू, लहर प्रमुख हैं । कुवेंपु की

रचनाएँ हैं-कोळलु (मुरली), किंकिणी, कृत्तिके, चकोरी, प्रेम काश्मीर, षोडषी आदि। इन संग्रहों की कविताओं में प्रकृति-सौन्दर्य के मनमोहक चित्र अपनी सारी गहरी उभरी रेखाओं के साथ उपस्थित हुए हैं। प्रसाद और कुवेंपु के कवि ने प्रकृति के एक-एक कला के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है। कवि और प्रकृति एकमेक हो गये हैं। प्रकृति के चित्रण में इन कवियों का कल्पनावैभव अपने चरम को छू गया है। प्रकृति को जीवन की चिर-संगिनी के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति रोमांटिक कवियों का सामान्य लक्षण है। कुवेंपु और प्रसाद में प्रकृति के प्रति जो मोह दर्शित है वह अनुभूति और चिन्तन के स्तर पर एक उदात्त रूप धारण कर गया है। दोनों कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति में तीव्रता एवं तन्मयता दर्शनीय है। प्रसादजी की पंक्तियां हैं।

मानव जीवन वेदी पर,
परिणय है विरह-मिलन का,
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का।
चेतना लहर न उठेगी,
जीवन समृद्ध थिर होगा,
सन्ध्या हो सर्गप्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

'आँसू' की यह दर्शहीन वेदना क्रमशः उदात्त होकर अकुंठित रु के स्वर से जीवन की पूर्णता को रस- सान्द्र बनाती है। विरह-मिलन, सुख- दुःख के खण्ड सत्य को आनन्द की यह सहज उपलब्धि प्रसाद के काव्य कान हैं। प्रसाद ने निजी प्रेमानुभूति का उदात्तीकृत रूप अंकित किया है। उनका प्रेम निज के घेरे में ही रहकर दार्शनिकता अवगुंठन ओढ लेता हैं। कुवेंपु का प्रेम अपेक्षतया व्यापक धरातल पर अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने दांपत्य जीवन के संदर्भ में स्त्री-पुरुष प्रेम के गरिमामय रूप का चित्रण किया है। अल्हड प्रेम को चित्रण दोनों ने नहीं किया है। प्रणय आत्मसिद्धि में परिणत होकर सार्थकता पा जाता है। प्रेम को इस तरह दार्शनिकता से मंडित कर देने की प्रवृत्ति दोनों में दिखाई देती है। प्रसाद से बड़कर कुवेंपु का काव्य अनेक आयामों से युक्त है। प्रसाद ने रोमांटिकता से मुक्त होने की चेष्टा नहीं की। जब कि कुवेंपु ने रोमांटिकता से मुक्त होने का प्रयास किया है। उसी का फल है 'पांचजन्य'; 'सोवियत रूस और कोयल' इन कविताओं में कुवेंपु की प्रगतिवादी दृष्टि उभर आयी। हाँ, यह सच है कि उनकी विद्रोही भावना और क्रांति की कामना की अभिव्यक्ति रोमांटिकता से अछूति नहीं रह सकती।

कुवेंपु द्वारा रचित "रामायण दर्शन" और प्रसाद द्वारा निर्मित कामायनी' दोनों में महाकाव्य कन्नड और हिन्दी साहित्य की कालजयी रचनाएं हैं। 22,210 पंक्तियों से युक्त 'रामायण दर्शन' ने आधुनिक कन्नड साहित्य को एक ऊँचा स्तर प्रदान किया है। इसमें कवि ने रामकथा को मानवीय मूल्यों से मंडित किया है और उसके माध्यम से भारतीय परंपरा को नयी अर्थवत्ता प्रधान की है। उसी प्रकार प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य को लिखकर आधुनिक हिन्दी काव्य को समृद्ध किया है। इसमें कवि ने आदि पुरुष मनु की कथा के माध्यम से मानव सभ्यता के विकास को, मानवीय संस्कृति के उत्थान को, मनुष्य के उत्थान पतन को दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक स्तरों पर उद्घाटित करके मानव जीवन की सार्थकता को दर्शाया है।

"समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।"

इस प्रकार कवि ने आनन्दवाद की स्थापना की है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' कहकर प्रसाद ने नारी को ऊँचा स्थान दिया है।

इन दोनों महाकाव्यों में अभिव्यक्त जीवन-दर्शन में आस्था का स्वर सुनायी पड़ता है। दोनों कवि उदात्त की सृष्टि करके मानव-जीवन की सार्थकता एवं सफलता को प्रतिपादित किया इस दृष्टि से कुवेंपु और प्रसाद महान कवि हैं ही।

नाटककार प्रसाद नाटककार कुवेंपु से बहुत आगे निकल गए हैं। वस्तुतः प्रसाद का महत्व कवि और नाटककार के रूप में अधिक स्वीकारा गया है । अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटकों की रचना कर प्रसाद ने इतिहास में नयी प्राणप्रतिष्ठा की है। ये नाटक भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति स्थित उनकी आस्था को प्रकट करते हैं। कुवेंपु ने भी पौराणिक कथा-प्रसंगों को आधुनिक संदर्भों में रखते हुए कई नाटक रचे हैं । 'शूद्रतपस्वी' में शम्बूक को और 'बेरळगे कोरळु' में एकलव्य को नया व्यक्तित्व प्रदान करके कुवेंपु ने परम्परा को तोड़ने का प्रयास किया है।

उपन्यासकार के रूप में कुवेंपु प्रसाद से अधिक सशक्त है। 72 अध्यायों से युक्त 637 'पृष्ठों का उपन्यास 'कानरू सुब्बम्म हेग्गडति' और 64 अध्यायों से युक्त 750 पृष्ठों का 'मळे गाळल्ली मदुमगळ्' इन दोनों महाकाव्य उपन्यासों में कर्नाटक का ग्रामीण अंचल लहरा उठा है। एक युग के संपूर्ण जीवन को समग्रता में चित्रित करके कुवेंपु ने अद्भु कला का परिचय दिया है। प्रसाद ने भी तीन उपन्यास लिखे हैं । उनमें यथार्थ-दर्शन की दृष्टि से 'कंकाल' का उल्लेख किया जा सकता है । प्रसाद और कुवेंपु दोनों ने कहानियों की रचना की है । कुवेंपु की कहानियों में उनका जिंदादिल व्यक्तित्व उजागर हुआ है। कुवेंपु और प्रसाद दोनों उच्चकोटि के आलोचक हैं। उनका आलोचकभारतीय काव्यशास्त्र परंपरा से अनुप्राणित है। प्रसाद का रचनाकार व्यक्तित्व शैव दर्शन से प्रभावित है तो कुवेंपु पर भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषीयों का प्रभाव देखा जाता है । उनको प्रभावित करने वालों में मिल्टन, तोल्सतॉय, विवेकानन्द, परमहंस, अरविन्द आदि प्रमुख हैं । अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि कुवेंपु और प्रसाद दोनों श्रेष्ठ स्रष्टा होने के साथ महान द्रष्टा भी हैं।

कामायानी और प्रतीकवाद

डॉ. आर. प्रकाश
हिन्दी सहायक प्राध्यापक
एस टी जे कन्नीका महाविध्यालय
चिक्कमगलूर 577101

'प्रतीक' शब्द व्युत्पत्ति के संबंध में हिन्दी शब्द सागर में लिखा है कि "प्रतीयते अनेन इति प्रतीकम"। अर्थात जिससे प्रतीत हो या किसी वस्तु की अभिव्यक्ति हो वह प्रतीक है। प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय संस्कृत साहित्य के प्रसिध्द वैयाकरण भट्टोजी दीक्षित के पुत्र भानू दीक्षित ने ' अमरकोश' की व्याख्या में 'इण' धातु में 'कीकन' प्रत्यय लगाकर, उससे पूर्व प्रति उपसर्ग का योग करके प्रतीक श्ब्द की सिध्दि की है अर्थात प्रति+इण+कीकन=प्रतीकन जिसका अर्थ है कि किसी अगोचर वस्तु का प्रतिनिधि। प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति का उल्लेख करते हुए अपने 'गीता रहस्य' में श्री तिलक महोदय ने लिखा है कि 'प्रति' उपसर्ग के साथ इक अर्थात् क्रिया का योग होने पर प्रतीक शब्द की सिध्दि हुई है अर्थात प्रति=आपनी ओर+इक=झुका हुआ अर्थात जब किसी वस्तु का ज्ञान हो तब उस भाग को प्रतीक कहते है। हिन्दी में प्रतीक सर्वत्र किसी न किसी रूप में साम्य मूलक अर्थों का ही संकेत करता है और साथ ही साहित्य क्षेत्र में कुछ विशेष अर्थ भी व्यक्त करता है। प्रतीक का अर्थ है प्रतिष्ठान अथवा एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना। संस्कृत साहित्य में प्रतीक के लिए उप लक्षण शब्द भी आया है। जब कोई नाम या वस्तु इस प्रकार से व्यवहृत हो कि वह वस्तु अपने इस गुण में अपने समान अन्य वस्तुओं के गुणों का ज्ञान बिखरा दे तो उस शब्द को उपलक्षण कहा जाता है, परंतु आधुनिक समीक्षा में प्रत्येक शब्द जिस भाव को व्यक्त करता है वह उपलक्षण से गृहीत नही है। समीक्षा के अनुसार यह प्रतीक शब्द अंग्रेजी के शब्द सिंबल (Symbol) के पर्याय रूप में आया है जिससे उपलक्षण का अर्थ समाप्त हो गया है।

कामायानी में प्रतीकवाद

रामचरितमानस के पश्चात हिन्दी साहित्य में आज तक का जन जीवन और युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व नियमन और परिदर्शन कराने वाली यदि कोई महान कृति सामने आई है तो वह कामायानी है। इस प्रकार आचार्य जयशंकर प्रसाद की कामायानी आधुनिक युग की सर्वोत्तम कृति और भारतीय चेतना का गौरव ग्रंथ है तथा विचारक यह भी कहते है कि कामायानी प्रसाद की व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति है। उसमें कलाकार अपनी समस्त साधना को लेकर पोरस्तुत हुआ है।

कामायानी में रहस्यवादी शैली का पुट होते हुए भी वह एक छायावादी रचना है। पहले तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि छायावाद एक साहित्यिक शैली है, कोई दर्शन नही, इसलिए हम इसे किसी दार्शनिक विचारधारा के अंतर्गत सम्मिलित नही कर सकते। छायावाद प्रकृति में मानव जीवन प्रतिबिंबित है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के सुरम्य अंचल में चित्रित मानव के मानसिक छाया संस्पर्शों की छायावादी व्यंजना छायावाद है। इस दृश्टि से देखने पर कामायानी में रहस्यवादी प्रवृत्ति के रहते हुए भी छायावादी प्रवृत्ति ही व्यापक है। इसमें संदेह नही है कि हिन्दी की छायावादी कविता पर अंग्रेजी की रोमंटिक कविता का प्रत्यक्ष प्रभाव उसके केवल बाह्य रूप आकार एवं शिल्प तक ही सीमित है, किंतु यह बडे अनर्थ की बात होगी कि कामायानी प्रवृत्ति निर्धारण केवल उसके शिल्प के आधार पर ही कर लिया जाए। कामायानी में संवेदना का आधार है और स्वानुभूतिमई अभिव्यक्ति है। प्रकृति सौंदर्य कामायानी के अनुभूति पक्ष का यह अंतरंग अंग बन गया है। डा.नगेंद्र

का कहना है कि छायावाद एक अभिव्यक्ति है, जिसमें प्रतीकों का प्रतीत योग है, कामायानी की अभिव्यंजना के प्रसाधन में प्रतीकों के साथ बिंबों वक्रभंगिमाओं और अप्रस्तुत योजनाओं का भी सहयोग है।

अनेक वस्तुओं के समुदाय में अनेक वैविध्य का बोध अत्यंत आवश्यक है। इस वैविध्य बोध में वर्गीकरण का स्थान प्रमुख है। यह ठीक है कि प्रतीकों के वर्गीकरण में ऐतिहासिक दृष्टि भी उपेक्षणीय नही है, किंतु इस दृष्टि में वैविध्य निरूपण के लिए अधिक अवकाश नही है। यो तो प्रतीकों के कई वर्गीकरण हो सकते है। मैनें इस शोध लेख के लिए केवल चार भेद को ही प्रस्तुत की है। वे है-

रूपात्मक प्रतीक

रूप चक्षुष विषय है। जिस शब्द से ऐसे अर्थ का बोध होता है जो हमारे स्मृति पटल पर एक आकार प्रकार खडा कर देता है, वह रूपात्मक प्रतीक होता है। रूपात्मक प्रतीक के भी अनेक पहलू होते है। कही वह आकृति से संबंधित होता है, कही परिवेश से, जिसमें रूप भी समाहित हो जाता है और कही वह वर्ण मूलक होता है, जिसमें आकृति या परिवेश के होते हुए भी प्रधानता वर्ण या रंग की होती है। इस प्रकार रूपात्मक प्रतीक के तीन भेद है-

आकृतिमूलक प्रतीक - आकृतिमूलक प्रतीक वह शब्द या पद होता है जो एक आकृति या नियत रूप प्रस्तुत कर देता है। उदाहरण के लिए नीचे के पद में मंगल खील को लीजिए-

विभव मतवाली प्रकृति का आवरण वहनील,
शिथिल है, जिस पर बिखरना प्रचुर मंगल खील।।

यहां मंगल खील आकृति मूलक प्रतीक है। उत्सवों पर मंगल खील बिखरी जाती है। शुभ वस्त्र पर बिखरी हुई बालों की आभा इतनी नही निखरती जितनी नीले या काले वस्त्र पर निखरती है। आवरण वह नील तो नीलाकाश का वर्ण मूलक प्रतीक है और बिखरी हुई खीलों में तारों का प्रतीकत्व है। खीलों आकृति उनका लघु शुध्द स्वरूप तारों से बहुत साम्य रखता है। आकृतिमूलक प्रतीकों का यह अन्य उदाहरण दृष्टव्य है।

वह विराग विभूति ईर्ष्या पवन से जो व्यस्त,
बिखरती थी और खुलते ज्वलन कारण जो अस्त।

यहां भस्मावृत कणिकावों का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। भस्म जब पवन से उडकर कणिकाओं के ऊपर से हट जाती है तब कनिकाएं व्यक्त हो जाती है और अपनी दहक के साथ दीप्त दिखाई देती है। यह ज्वलन कणिकाओं से यह आकृति सामने आती है जो अपने वर्ण को भी प्रस्तुत करती है।

परिवेशमूलक प्रतीक - परिवेशमूलक प्रतीक आपने परिवेश यह दृश्य को समाहित किए रहता है। नीचे के उदाहरण में परिवेश को देखा जा सकता है -

डाली में कंठक संग कुसुम / खिलते मिलते भी है नवीन।
अपनी रूचि से तुम विधे हुए / जिसको चाहे ले रहे बीन।

इन पंक्तियों में डाली कंटक और कुसुम तीन प्रतीक है, किंतु डाली परिवेश मूलक प्रतीक है। एक गुलाब की डाली में कांटों और कुसुमों के साथ लगे हुए पत्तों का परिवेश भी प्रत्यक्ष हो जाता है। यहां डाली जीवन का प्रतीक है और कंटक और क्रमश: दुख और सुख के प्रतीक है।

वर्णमूलक प्रतीक - इन प्रतीकों में आकृति इतनी प्रधान नही होती जितना कि वर्ण या रंग होता है। यो तो आकृति में कोई रंग होता ही है, किंतु वर्ण मूलक प्रतीकों में वर्ण या रंग ही लक्ष्य होता है। उदाहरण के लिए -

और उस मुख्य पर ले विश्राम
अरूण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

यहां कभी को प्रमुख रूप से वरना अभिप्रेत है। रक्त की किसलय और अरूण की अम्लान किरण दोनों प्रयोग में अरूणिमा का प्रतीकत्व निहित है। यद्यपि किसलय मैं वर्ण के साथ उसका आकार प्रकार भी अविस्मरणीय है।

स्वभावात्मक प्रतीक

'इन प्रतीकों में गुण या भाव ही संनीहित रहता है। जड और चेतन दोनों प्रकार के जगत में गुण या भाव अवश्य रहता है और वही जगत के उस अवयव या अंग का स्वभाव माना जाता है। कामायानी में ऐसे प्रतीकों की प्राचार्य है। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

घूमने का मेरा अभ्यास,
बडा था मुक्त व्योम तल नित्य
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
हृदय सत्ता का सुंदर सत्य।

यहां हृदय सत्ता में प्रेम का प्रतीकत्व है और प्रेम एक भाग मात्र है।

क्रियात्मक प्रतीक

तीसरा प्रतीक वर्ग या क्रियात्मक प्रतीकों का है। क्रियात्मक प्रतीकों में क्रियापद भी सम्मिलित है और अन्य शब्द भी। क्रियेतर शब्द का क्रिया प्रतीक के रूप में व्यवहार यहां देखा जा सकता है।

संकेत कर रही रूमाली
चुप चाप बरसाती खडी रही।

नाच का एक रूपात्मक परिवेश होते हुए भी, वह किया है। स्फुलिंग के नृत्य जो प्रतिकत्व निर्धिष्ठ है वह दृश्य के अस्तित्व का एकदम निषेध न करता हुआ उसकी क्षणभांगुरता को ही ध्योती करता है।

मिश्र प्रतीक

मिश्र प्रतीक वे प्रतीक होते है जो उक्त वर्गों में से कम से कम किन्ही दो का एक ही साथ प्रतिनिधित्व करते है। इनको हम संकर प्रतीक भी कह सकते है। पीछे धरा की सिकुडन में जिस प्रतिकत्व की प्रधानता दिखाई गई है, उसमें वास्तव में रूप और भाव दोनों का मिश्रण है। इस उदाहरण को भी देखें

कितने मंगल थे मधुर गान / उसके कानों के रहे चूम।

यहां चूमना शब्द में क्रियात्मक और भावनात्मक प्रतीकों का सा निवेश है। इस शब्द से एक ही साथ सुनने की क्रिया और मोहने का भाव प्रतीत होता है।

निष्कर्षता कहा जा सकता है कि अलंकारों से रस निश्पत्ति को सहायता मिलती है और यह बात ठीक भी है क्योंकि अलंकार अर्थ को स्पष्ट करते है जीसस निश्पत्ती स्फूर्त होती है। प्रतीकों से निष्पत्ति में स्फूर्ती ही नही, गंभीरता भी आती है। अतएव रस दृश्टि से भी काव्य में प्रतीक स्थिति बडी उपादेय होती है। कामायानी में काव्य के सभी पक्षों में सुंदर समन्वय है। कामायानी को प्रतिकालोक में जिस रूप को संवारने का अवसर मिला है वह बहुत कम काव्यों का सौभाग्य है। भावों के प्रेषण, स्पंदन और रस निष्पत्ति को भी बिंबों और उपमानों के साथ प्रतीकों का अतुल सहयोग मिला है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य में प्रतीकवाद - डा वीरेंद्र सिन्हा
2. कामायनी में प्रतीक विधान - डा चित्रा शर्मा
3. कामायनी - जयशंकर प्रसाद
4. कामायानी में काव्य, संस्कृति और दर्शन - डा द्वारिका प्रसाद सक्सेना

बाल मनोविज्ञान को दर्शाती ' मधुआ ' कहानी

डॉ. श्रीमती नलिनी कुलकर्णी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
जे.एस.एस.कालेज, धरवाड़

यह सर्वविदित है कि हिंदी साहित्य अत्यंत समृद्ध रहा है। हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में अनेक रचनाकार, साहित्यकार आदि का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय रहा है। जिस प्रकार आसमान की सुंदरता , शोभा अनगिनत तारों से रहता है ठीक उसी प्रकार हिंदी साहित्य रूपी आसमान में रचनाकारों रूपी अनगिनत तारे हमेशा चमकते रहे हैं। हिंदी आधुनिककालीन साहित्य में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनाएँ पाई जाती हैं। इन्हीं अनगिनत प्रसिद्ध , महत्वपूर्ण तारों में अत्यंत सुपरिचित, प्रसिद्ध ताराहै जयशंकर प्रसाद।

हिंदी भाषी जयशंकर प्रसाद जी के नाम से अच्छी तरह से परिचित है। हिंदी आधुनिक साहित्य में प्रयोगवाद , प्रगतिवाद , हालावाद , छायावाद आदि रहे हैं। छायावाद के चार नामों में एक नाम जयशंकर प्रसाद जी का रहा है। जयशंकर प्रसाद जी केवल छायावादी कवि न रहकर एक नाटककार, कहानीकार आदि रहे हैं। अर्थात जयशंकर प्रसाद जी ने हिंदी गद्य और पद्य दोनों में अपना विशेष महत्वपूर्ण योगदान दिया है।मुख्यतः प्रसाद जी ऐतिहासिक नाटककार , कथाकार के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं।

' कामायनी ' जैसे महाकाव्य की रचना प्रसाद जी ने की है। ' आकाशदीप ', पुरस्कार , मधुवा , ममता जैसी कहानियों के रचनाकार भी प्रसाद जी ही रहे हैं। इनके द्वारा रचित कहानियों को पढ़ने के बाद इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इनकी कहानियाँ हृदयस्पर्शी रहा है।

' मधुआ ' प्रसाद जी की बहुचर्चित कहानी रही है। जिसमें इन्होंने मधुआ नामक एक गरीब बालक को केंद्र में रखकर अपने विचारों को पाठकों के सामने रखा है। इस कहानी में ठाकुर सरदार सिंह को कहानी सुनने का बड़ा शौक है उसे कहानी सुनाता रहता है एक शराबी। जब भी समय रहता है तब वह शराबी सरदार जी को कहानी सुना कर उसके बदले में एक रुपए पाता है जिससे वह और शराब पीने की सोचता है। जब उसे कई दिन तक शराब पीने नहीं मिलती तो वह बहुत उतावला रहता है। यहाँ तक की शराबी को खाने , भूख आदि की सुध भी नहीं रहती बल्कि अगर पैसा मिले तो उससे वह शराब पीना चाहेगा बाकी कुछ उसके दिमाग में नहीं रहता। लल्लू नाम का आदमी ठाकुर साहब का जमादार है। लल्लू एक छोटे से लड़के को डांट रहा था कि तुझे कुंवर साहब ने लाथ मारा मारी हैं गोली नहीं मारी। वह लड़का रो रहा था। उसे बार-बार खाल उधाड़ ने की धमकी भी दे रहा था। वह मासूम बच्चा जब रोता हुआ बाहर आता है तब शराबी उस बालक को देखता है प्यार से शराबी उस बालक के आंसुओं को पोछता है और अपने साथ उसे लेकर चलता है जब उसे पता चलता है कि वह लड़का बेचारा हर दिन मार ही खाता है न कि खाना। वह शराबी अपनी झोपड़ी में ले जाकर उसके पास जो एक पराठे का टुकड़ा था उसे खिलाता है और कुछ लाने का वादा कर निकलता है उसे यह समझाता है कि रोना नहीं अगर रोएगा तो मार ही मिलेगी आदि। उस बच्चे की मासूमियत ने शराबी को इतना प्रभावित किया है कि शराब को खरीदना छोड़ मासूम बच्चे की भूख मिटाने के लिए जो संभव है उसे खरीदता है। खुद के बच्चे ने नहीं बल्कि एक पराये बच्चे ने उसे इतना प्रभावित किया है। बच्चा संतृप्त होकर खाता है।

चाकू आदि को तेज करने की मशीन (सन की कल) शराबी ने किसी के पास गिरवी रखी थी वह उसे वापस मिल जाती है। शराबी मासूम बच्चे का को सलाह देता है कि कही चला जाए क्योंकि उसके पास इतना पैसा नहीं कि वह दोनों की अच्छी तरह से देखभाल कर सकें पर वह लड़का उसे छोड़ कहा जा सकता तब शराबी उसे यहाँ

तक बताता है उसके साथ गली गली घूम कर चाकू आधी को धार लगाना है तुरंत वह लड़का तैयार हो जाता है। बेटे ने तय किया है कि शराबी के साथ रहकर काम जरूर करेगा पर वापस कभी जमादार के यहाँ नहीं जाएगा। बेटे की यह सोच देख शराबी भी मन ही मन शपथ लेता है कि शराब नहीं पिएगा बल्कि काम जरूर करेगा और दोनों काम पर निकल पड़ते हैं।

मतलब यह है कि शराब की लत बहुत ही बुरी होती है जो कोई इसके अधीन हो जाता है वह सब कुछ खो देता है अपनी सेहत , परिवार , मान , धन आदि। उसकी यह लत कदापि छूटती नहीं है परंतु एक मासूम बच्चे के प्यार , अपनापन आदि एक शराबी में परिवर्तन ला दिया। बेटे के प्यार भरे शब्दों ने उसका मन जीत लिया इसलिए वह काम करने तैयार होता है। वह लड़का अनाथ है मतलब उसके पिता की मौत कब की हुई है इसलिए किसी भी हालात में उसके साथ ही रहेगा। और दोनों अत्यंत खुशी से काम पर निकल पड़ते हैं।

यह मासूम बच्चा है मधुआ। इसके नाम पर ही कहानी का नामकरण किया है। इस प्रकार माना जाता है कि बच्चे निरागस होते हैं और अगर उन्हें थोड़ा सा प्यार देंगे तो उसके बदले में ढेर सारा प्यार दे देते हैं। अगर उन्हें फटकारेगे , रुलाएंगे तो ऐसों को कभी अपनाते नहीं , प्यार नहीं करते बल्कि उनसे दूर रहना ही पसंद करते हैं।

तात्पर्य यह है कि छोटे मासूम बच्चों के प्यार और अपनापन में इतनी अलौकिक ताकत होती है कि बुराई को अच्छाई में बदल देते हैं। इसका उदाहरण खुद मधुआ दे रहा है। जहाँ कहीं उसे थोड़ा सा प्यार मिला , दुलार अपनापन मिला वह उसके साथ किसी भी हालत में रहने के लिए तैयार हो जाता है चाहे कितने भी कष्ट क्यों न उठाने पड़े उसकी चिंता वह नहीं करता आदि।

अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि एक निरागस बाल मन ने एक शराबी को परिश्रमी मानव बना दिया। यहाँ पर छोटे बच्चे का मन किस प्रकार होता है उसे देख सकते हैं। अर्थात मधुआ के माध्यम से यह कहानी बाल मनोविज्ञान को दर्शाती है इतना निश्चित है। मेरा यहाँ अल्पसा प्रयत्न रहा है कि बाल मनोविज्ञान को दर्शना।

जयशंकर प्रसाद के नाटक : एक अवलोकन

श्रीमती सती भारती दयानंद
हिन्दी प्रवक्ता
ATNCC, **शिवमोग्गा**

प्रसाद ने जब नाटकों की शुरूआत की, उसके पहले उन्होनें चार एकांकी रूपक लिखे थे - 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी-परिणय' और 'करुणालय' इत्यादि। 'सज्जन' का कथानक 'प्रायश्चित' का कथानक इतिहास की एक और महाभारत के अंश - विशेष पर आधारित है। किंवदती पर आश्रित है। इसमें जयचंद एवं पृथ्वीराज की कहानी है। पहले एकांकी में जहां दुर्योधन दुराग्रही का स्वरूप अहकारी और भ्राताओं से द्वेष रखनेवाला है, जिसे हम पाप की संज्ञा दे सकते हैं, दूसरी तरफ सज्जनता के अवतार, पशुताओं से सर्वथा, सज्जन एवं बुद्धिमान् युधिष्ठिर है, जो पुण्य में अनुरक्त है।

'प्रायश्चित ' में नादीपाठ और सुत्रधार द्वारा नाटक का आरंभ नहीं किया गया है। अंत में प्रशस्ति द्वारा समाप्ति भी नहीं रखी गई है। कल्याणी-परिणय ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है। इसमें नायक का लक्ष्य विजय प्राप्ति है और फल के रूप में विजय के साथ-साथ चंद्रगुप्त को एक और जीवन संगिनी भी मिल जाती है।

'करूणालय' दृश्यकाल गीतिनाट्य के ढगपर लिखा गया है। इस रचना मे नाटकीय अश की न्यूनता औश्र कहानी- तत्व की प्रधानता है। यह कथोपकथन द्वारा पद्य में लिखी कहानी है। इस प्रकार इनकी प्रारंभिक में पाश्चात्य प्रभाव संस्कृत नाट्य में वर्जित युद्ध, आम्तघात इत्यादि एकांकी रचनाओ के दृश्यों की अवतारणा औश्र अमित रचना में दुखत का रूप प्रकट हुआ है।

राज्यश्री

सन् 1915 में प्रसाद ने एक बड़ा नाटकीय प्रयोग किया 'राज्यश्री' के रूप में इस नाटक की प्रमुख पात्र राज्यश्री है राज्यश्री के पति मौखरी गृह वर्मा की हत्या मालव नरेश देवगुप्त के हाथों होती है। भाई राजवर्धन भी गौडाधिप शशांक (नरेंद्र गुप्ता) के हाथों मारा जाता है। शशांक राज्यश्री को कारागृह से मुक्त कर देता है हर्षवर्धन अपनी बहन की खोज करता है और अंत में उसे ढूँढ़ निकालता है, जब वह चिंता में जलना जा रही थी। बाद में दोनो भाई-बहन मिलकर लोकसेवा में रत हो जाते हैं।

इस नाटक में भारतीय रीति की भांति प्रारंभ में नादीपाठ है, अंत में प्रशस्ति-वास्य है। इस समस्त नाटकीय व्यापार में आपत्तियों की एक आँधी चलती है, जिसमें लेखक की अप्रौढ -चातुरी अपने बल पर नहीं खड़ी रहती है। रचना- इसमें राजवर्धन, गृहवर्मा इत्यादि की हत्या को दिखाकर लेखक अपने स्वच्छतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं, क्योंकि भारतीय पद्धति में हत्या आदि भावनाएं निषिद्ध मानी गई हैं। परन्तु 'राज्यश्री' नाटक में राज्यवर्धन एवं गृहवर्मा की हत्या होती है। इस नाटक में प्रेस का स्वच्छंद रूप प्रकट हुआ है। सुरमा एक ऐसी ही नारी है, जो देवगुप्त में स्वच्छद प्रेम प्रकट करती है।

देवगुप्त असत का प्रतीक है और सत् पर असत् कभी विजय प्राप्त नहीं करता। भिक्षु विकट घोष भी राज्यश्री के रूप की ज्वाला में जेलकर डाकू बन जाता है| राज्यश्री नाटक में राज्यश्री का चारित्रिक विकास है। वह संसार की मंगल कामना में प्रवृत्त दिखाई देती है। हर्षवर्धन सत का प्रतीक है। कर्तव्य ज्ञान ने उसमें संतोष की वृत्ति उत्पन्न कर दी है । " यदि इतने ही मनुष्यों को मैं सुखी कर सकूँ, राज्धर्म का पालन कर सकूँ तो कृत-कृत्य हो जाऊँगा।"[1] हर्ष में

मनुष्योचित भावुकता के साथ फल प्राप्ति की कामना भी है। हर्ष के व्यक्तित्व में राजशक्ति के मद का प्रदर्शन नहीं, मर्यादा- रक्षा की भावना है। शुद्ध मानव व्यवहार का आदर्श यही भावना है।

इन पात्रों के अतिरिक्त शांतिदेव एक ऐसा पात्र हैं, जो परिस्थिति एवं घटनाओं के घात के घात-प्रतिघात के कारण मनुष्य कोटि से गिर जाता है। वह कहता है - " सब बात तो यह है - कि मुझे अपने सुख के लिए सब कुछ करना अभीष्ट है।"[2] देवगुप्त आचरणभ्रष्ट, कामुक और प्रवंचक है। वह सुरमा से अपना स्पच्छंद प्रेम प्रकट करता हैं, यह प्रेम भारतीय पद्धति के प्रतिकूल है – " सुरमा ! मेरे जीवन में ऐसा उन्मादकारी अवसर कभी न आया था। तुम यौवन, स्वास्थ्य और सौंदर्य की छलकती हुई प्याली हो - पागल न होना ही आश्चर्य है, मेरे साहस की विजयलक्ष्मी।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'राज्यश्री' में प्रसाद ने शेक्सपियर भी भांति जीवन के स्वच्छद प्रेम से युक्त संघर्ष, चरित्र, मनोवेगों की अभिव्यक्ति, देशकाल की योजना और स्वगत कथनों में अंतर्द्वद्व की अभिव्यक्ति नियतिवाद की स्वीकृति है तथा इस पर संस्कृत नाट्यशास्त्र की गहरी छाप है, जिसके कारण प्रसाद की स्वच्छंदतावादी वृत्ति एवं पाश्चात्य नाट्यतत्व के ग्रहण की प्रवृत्ति काफी बाधित हुई है। संस्कृति नाट्यशास्त्र में वध की वर्जना है, इसलिए ये दृश्य प्रस्तुत नहीं किए गए हैं. बस सूचनाभर है। इसमें प्रसाद भारतीय एवं पश्चिमी नाट्यकला के मिले जुले प्रभाव को लेकर निज के नाटकीय दृष्टिकोण के निर्माण का प्रत्यत्न करते हुए दिखाई देते हैं।

विशाख

'विशाख' जयशंकर प्रसाद का दूसरा नाटक है, जो सन् 1921 में लिखा गया। इसकी कथा कल्हणकृत राजतरंगिणी' से ली गई है। इसकी कथावस्तु मे भी स्वच्छंद प्रेम और जीव के संघर्षमय स्वरूप का समन्वय है। प्रसाद की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के अनुकूल इस नाटक की प्रणय-कहानी में सामान्य और विशेष का संघर्ष है। नाटक का आरंभ ही नायक के अंतर्द्वन से होता है - "शैशव । जबसे तेरा साथ छूटा, तबसे असंतोष, अतृप्ति और अटूट अभिलाषाओं ने हृदय को घोंसला बना डाला। इन विहंगमों का कलरव मन को शांत होकर थोड़ी देर भी सोने नहीं देता । यौवन सुख के लिए आता है यह एक भारी भ्रम है।"[4]

इस नाटक में प्रसाद ने नया चरित्र दिखाया है, जो उनकी मौलिक देन है प्रेमानंद का चरित्र । यही प्रेमानंद इस नाटक को आद्योपांत दार्शनिकता से ओतप्रोत बनाए रखता है। इस नाटक में तत्कालीन वातावरण का अति सुंदर वर्णन है। इस नाटक की विशेषता यह है कि सभ बौद्ध भिक्षु पतनशील हैं। समग्र रूप में 'विशाख' पर अधिक पाश्चात्य प्रभाव होते हुए भी इसकी रचना - शैली पर संस्कृत - नाट्यशास्त्र का पर्याप्तव प्रभाव है। इसमें विशाख द्वारा महापिंगल के वध का दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिया गया है। उदाहरण, सैनिक देखता नहीं है राजानुचर महापिंगल का यह शव है। इसी विशाख ने अभी इसकी हत्या की है। यही महापिंगल संस्कृत नाटकों का विदूषक है तो पाश्चात्य सुखांतिकियों के स्वच्छद प्रेम की भावना से ओतप्रोत नायकों का व्यवहार कुशन अनुचर (बैलेट) हैं।

अजातशत्रु

यह नाटक प्रसाद के पूर्ववर्ती नाटकों से पृथक है। इस नाटक में मगध, काशी, कौसल, कौशाभी इत्यादि राज्यों की कहानी एक साथ चलती है। इस नाटक पर और भी ज्यादा पाश्चात्य प्रभाव है। इसमें उन्होने सतति की अकृतज्ञता अथवा विद्रोह का चित्रण किया है। यदि यह कहें कि इस नाटक में सर्वत्र क्रांति का विकट घोष सुनाई पड़ता है तो यह अतिशयाक्ति नही होगी। यह क्रांति सामाजिक क्षेत्र में अभिजात के विरुद्ध निम्नवर्ग की है और राजनीतिक क्षेत्र में राजाओं के विरूद्ध राजकुमारों की है। द्वंद ही संघर्ष, विरोध, युद्ध इत्यादि में प्रकट होता है। सत्-असत् पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, राग-विराग को लेकर उठने वाला मानसिक द्वंद्व ही अंतर्द्धद्र है और इस दल को जीतने वाला चरित्र ही अनूठा होता है। यही पाश्चात्य नाटककार भी स्वीकार करते है। इस नाटक में दिवसार और वासवी ऐसे ही चरित्र है। निम्न उदाहरण से उसकी मन स्थिति का अच्छा उद्घाटन होता है – " मैंने राजदंड छोड़

दिया है, किंतु मनुष्यता ने अभी मुझे नहीं परित्याग किया है । सहन की भी एक सीमा होती है। " [5]विरूद्धक अजातशत्रु से अधिक छलना, चारित्रयपूर्ण है। मल्लिका, मागधी, वासवदत्ता इस नाटक की स्त्री पात्रा हैं। मागधी अपने ढंग की निराली है। वह आत्महत्या कर लेती है। इसमें स्वच्छंद प्रेम भी है। उदाहरण, - " समुद्र : तुम्हारे रूप की ज्वाला ने मुझे पतंग बनाया था, अब उसी में जलने आया हूं। " [6]

कामना

'कामना' नाटक में पाश्चात्य नाट्य-तत्वों का समावेश है। कथावस्तु मे संघर्ष है। इसमें विवेक के मानसिक उद्वेलन से प्रकृति के प्रांगण में भूकंप की सृष्टि दिखाई गई हइस नाटक की समाप्ति भी सुखात एवं भरत - वाक्य से होती है।

जनमेजय का नागयज्ञ

इस नाटक में पश्चिमी स्वच्छदतावाद का अन्मुक्त रूप मिलता है। शेक्सपियर के नाटों की भांति इसमें महत्वाकांक्षा, प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की प्रेरणा से जीवन के संघर्षमय स्वरूप का चित्रण है। प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की भावना के फलस्वरूप आर्यों और नाग जाति का संघर्ष हुआ । इसमें उन्होंने शेक्सपियर की भांति नियति को माना है। जनमेजय, सरमा, ऋषि सभी इस नियति की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करते हैं। उदाहरण, जरत्कारु ऋषि कहते हैं - "अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है। कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं, उनसे भागकर कोई बच नहीं सकता। मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।"[7] सरमा भी एक जगह कहती हैं "मैं इस अदृष्य शक्ति का यंत्र है, वह जो मेरे साथ है, मुझसे कोई काम कराना चाहता है। "[8] शेक्सपियर ने मानव - क्रियाओं को नक्षत्रों से प्रसूत माना है। 'It is the stars, The stars above us govern our conditions.' इसकी रचना शैली का अनुसरण है। दोनों पक्षों (भारतीय एवं पाश्चात्य) के बीच सौहार्द की स्थापना ही प्रसाद की नाट्य-शैली की विशेषता है। इसका मूल तत्त्व संघर्ष है। इस नाटक का अंत विश्व नियंता के गुणगान से होता है -

लय हो उसकी, जिसने अपना विश्व रूप विस्तार किया।
आकर्षण का प्रेम नाम से सबसे सरल प्रचार किया ।
पूर्णानुभव कराता है जो 'अहमिति' से निजसत्ता का।
तू मैं ही हूँ इस चेतना का प्रणव- मध्य गुजार किया। [9]

स्कंदगुप्त विक्रमादित्य

इस नाटक का बीज जनमेजय का नागयज्ञ में विद्यमान है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों नाट्य-कलाओं का सहज समन्वय है । कथावस्तु में वैचित्र्य की प्रधानता है, कथाप्रवाह में कमी है (इसमें भी स्कंद कुंभा की लहरों में बह जाता है), किंतु इसका अंत करुण सुखात (टैजिकॉमेडी) है, क्योकि यदि अगरेजी नाट्य- शैली अपनाई जाती तो फिर भारतीय पद्धति का निर्वाह कैसे होता। " अधिकार का सुख कितना मादक और सारहीन है । " [10] इसी एक वाक्य से स्कंद का मानसिक उद्वेलन प्रत्यक्ष हो जाता है। संघर्ष की दृष्टि से स्कंद को बाह्य संघर्ष (विमाता अनंतदेवी) करना पड़ता है । घटनाओं का घात - प्रतिघात दैवयोग पर आधारित है। शेक्सपियर की रचनाओं के नाटकीय प्रसंग इन्हीं से प्रेरित है।

प्रसाद का दृष्टिकोण रसवादी है, जो भटार्क को भी सन्मार्ग पर ले आता है। इसमें कथावस्तु पश्चिमी नाटकों की तरह व्यापक है। विजया एवं देवसेना प्रेम के दो विरोधी स्वरूप हैं। प्रपंचबुद्धि एवं प्रख्यात कीर्ति बौद्ध धर्म के दो विरोधी स्वरूपों का उद्घाटन करते हैं। इसका मूलतत्व संघर्ष है। इसमें राज-परिवार के सात चरित्र कुमारगुप्ता, गोविंद, स्कंद, बधुवर्मा, पुरगुप्त, भीमवर्मा और कुमार दास आकाश में स्थित इंद्रधनुष के विभिन्न वर्णों की भांति अपनी विशेष पहचान रखते हैं। स्कंदगुप्त एवं चन्द्रगुप्त दो नाटकों का कार्य विस्तार काफी विस्तृत है।

एक घूँट

इसमें आनंदवाद की स्थापना काव्यात्मक शैली में हुई है। यह अपने बाहरी रूप और अंतरंग दोनों में ही पश्चिम के आधुनिक बुद्धिवादी नाटकों के प्रभाव से प्रभावित है। इब्सेन एवं शॉ ने नारी पात्रों को शक्ति दी है, इसका सम्पूर्ण प्रभाव प्रसाद पर दिखायी देता है। इसमें बनलता का द्वन्द्व स्पष्ट है । "मैं जिसे प्यार करती हूँ वही, केवल वही व्यक्ति–मुझे प्यार करें, मेरे हृदय को प्यार करे, मेरे शरीर को, जो मेरे सुंदर हृदय का आभरण है सतृष्ण देखे।"[11] यदि इसे प्रतीकात्मक एकांकी कहे तो उत्तम होगा। इसमें एक ही दृश्य है ।

चंद्रगुप्त मौर्य

इस नाटक में बाह्य संघर्ष की प्रधानता है। प्रसाद जिस प्रवृत्ति एवं उद्देश्य को लेकर नाटक निर्माण में प्रवृत्त हुये थे, उसका चरमोत्कर्ष 'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है। चंद्रगुप्ता का एक पात्र - चाणक्य, प्रसाद की सबसे बड़ी देन है। वह एक जगह कहता है - " महात्वाकांक्षी की मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है । " [12] प्रसाद का चाणक्य नंद तथा विदेशी यूनानियों के अत्याचार एवं आक्रमण से राष्ट्र का उद्धार करके लोक में शांति की स्थापना करता है। इसके पीछे पाश्चात्य नाटक के मूलतत्त्व संघर्ष एवं भारतीय नाट्य परम्परा के रसनत्त्व के समन्वय की प्रेरणा है। इस नाटक की कथावस्तु पर शेक्सपियर की एक रचना 'ट्रीटस इंडोनिक्स' का प्रभाव है। इस नाटक की वस्तु-योजना शिथिल है। उसमें काल संकलन का अभाव है। पर्वतेश्वर के हाथों आत्महत्या करने की कोशिश दिखाकर प्रसाद नाटक में पाश्चात्य स्वच्छंदतावाद का परिचय देते है।

ध्रुवस्वामिनी

यह इनकी अन्तिम कृति है। इस रचना में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में आधुनिकी नारी के जीवन की एक समस्या का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। इब्सन ने पाश्चात्य नाटक में बुद्धि-तत्व की स्थापना कर एक नई यथार्थवादी नाट्य-शैली का सूत्रपात किया था, जिसमे दृश्य के प्रारम्भ में विस्तृत रंग- संकेत देने की परम्परा का निर्वाह हुआ था। इस नाटक में यही नाट्य-शैली है। इस नाटक में प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी वे वैवाहिक जीवन का अवांछनीय परिस्थिति के प्रति नारी के सफल विद्रोह का चित्रण किया है और इसके रूप में निखार लाने के लिये तुलनात्मक विरोध में कोमा के शकराज के प्रति आदर्शवादी स्नेह भाव को प्रस्तुत किया है। यह एक जगह कहती " पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल है – सकता । " [13] ध्रुवस्वामिनी अपनी इस अवस्था का दोषी नियति को ठहराती है । " जीवन के लिये कृतज्ञ, उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्मविज्ञापन का भार ढोती रहे, यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है। जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगी ही। " [14]

प्रसाद के सभी मुख्य नाटकों में कूटनीति एवं अंतर्द्वन्द देखने को मिलता है। घटनायें स्वाभाविक मार्ग बनाती चलती है । घटनाओं मे युद्ध का कोलाहल, शांति, क्रोध, हत्या है, तो कहीं क्षमा, प्रेम और सेवाभावना है। भारतीय पद्धति के अनुसार लक्ष्य-प्राप्ति का उद्योग, निगति एवं समाप्ति का अवलम्बन लेकर वस्तु की सृष्टि में इतिहास एवं कल्पना का समावेश है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री : पृष्ठ : 6
2. जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री : पृष्ठ : 9
3. जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री : पृष्ठ : 12
4. जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृष्ठ : 19
5. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृष्ठ : 15
6. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृष्ठ : 21

7. जयशंकर प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृष्ठ : 7
8. वही, पृष्ठ : 15
9. वही, पृष्ठ : 19
10. जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य, पृष्ठ 11
11. जयशंकर प्रसाद : एक घूंट : पृष्ठ : 13
12. जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त मौर्य : पृष्ठ : 41
13. जयशंकर प्रसाद : धृवस्वामिनी : पृष्ठ : 16
14. जयशंकर प्रसाद : धृवस्वामिनी : पृष्ठ, 18

जयशंकर प्रसाद जी के साहित्य (उपन्यास के संदर्भ में)

डॉ. कविता **गद्दगूली**
के.एल.ई.एस. राज राजेश्वरी आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज फॉर वुमन
रेनेबेननूर

शोध सार

जयशंकर प्रसादजी हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकारों में एक है। कवि ,नाटककार ,कथाकार , उपन्यासकार आदि के रूप में विख्यात है। जयशंकर प्रसाद जी छायावादी कवियो में प्रसिद्ध है। छायावाद के संस्थापक और युग प्रवर्तक के रूप में जयशंकर प्रसादजी को देख सकते है। उन्होंने कविताएं, नाटक, उपन्यास और कहानी सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई है। इन्होंने 9 वर्ष के उम्र में ही कलाधर नाम से ब्रजभाषा में लिखते थे। प्रसाद जी के साहित्य में नैतिकता, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को हम देख सकते है। उन्होंने भारतीय इतिहास के गौरव को अपने साहित्य में व्यक्त किए है। प्रसाद जी के साहित्य में उत्साह भरी आशाओं का आलोक भी है। इनकी भाषा सहज और सरल भी है। साथ ही साहित्य में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि अलंकारों के साथ मानवीकरण का सफल प्रयोग भी किए है। प्रसाद जी को छायावाद का ब्रह्मा भी कहा जाता है। इनकी कहानिया और कविताओं में भारतीय मानवीय संवेदनाओं का झलक मिलती है। इसके अतिरिक्त प्रकृति को वर्णन करते हुए अलंकारीक, मानवीकृत ,उद्दीपक आदेश का स्वरूप भी प्रसाद जी के काव्य में मिलता है। जयशंकर प्रसादजी प्रेम और आनंद के कवि मानते है। प्रसाद जी प्रेमभावना का बड़ा सूक्ष्म और बहुविध निरूपण आपकी रचनाओं में किए है। प्रेम का संयोग वर्णन और वियोग वर्णन दोनों रूप को प्रयोग किए हैं। इसीलिए इनकी रचनाओ में प्रेम के पूर्ण छवि विद्यमान है। उसके एक-एक छंद में विरह की सच्ची पीड़ा को हम अनुभव कर सकते है।

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म मार्च, नौ शुक्लपक्ष के दस संवत 1946 वि,(तदानुसार 30 जनवरी 1889 ई दिनगुरुवार) को काशी के सरायगोवर्धन नामक स्थान में हुआ। उनके पिताजी बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध व्यक्ती थे और उन्होने एक विशेष प्रकार की सुरति (तंबाकू) बनाने के कारण उन्हें सुंधनी साहू के नाम से सभी बुलाते थे। उनका पिता बाबू देवी प्रसाद जी ने कलाकारों को आदर करते थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशी नरेश के बाद इन्हें हर हर हर महादेव के नारे से बाबू देवीप्रसादजी को स्वागत करते थे। जयशंकर प्रसाद जी के किशोरावस्था के पूर्व ही माता और बड़े भाई का देहावसान हो गया। उनके ऊपर सत्रहवी की उम्र में ही आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा। कच्ची गृहस्थी और घर में केवल सहारे के रूप में विधवा भाभी,कुटुम्बियो,परिवार से सम्बद्ध अन्य लोगों से संपत्ति हड़पने का षड्यंत्र इन सब का सामना करना पड़ा। उन्होंने सभी समस्याओ को वीरता और गंभीरता के साथ किया। जयशंकर प्रसाद जी के प्रारंभिक शिक्षा क्वींस कॉलेज में हुई। किंतु बाद में घर पर इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया। घर में ही इन्होने संस्कृत, हिंदी ,उर्दू तथा फारसी का अध्ययन किया। दीनबंधु ब्रह्मचारी नामक विद्वान इनके संस्कृत के अध्यापक थे। उनके समूह में रसमय सिद्ध की चर्चा की जाती है। इन्होंने साहित्य के हर विधा पर अपनी लेखनी चलाई है। इनके प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं कि राज्यश्री, सज्जन , कल्याणी परिणय, विशाख, जन्मेजय का नागयज्ञ , कामना,

प्रायश्चित, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, एक घूंट ध्रुवस्वामिनी प्रसिद्ध नाटक हैं। झरना, चित्रधार, महाराणा का महत्व, कानन कुसुम, प्रेम पथिक, आंसू, लहर ,कामायनी और प्रसाद संगीत इनके प्रमुख काव्य हैं। प्रतिध्वनि, आंधी और उर्वाशी, इंद्रजीत छाया, आकाश दीप इनके प्रमुख कहानियां हैं। कंकाल, एरावती (अपूर्ण उपन्यास) तितली एनके प्रसिद्ध उपन्यास है। काव्य और कला तथा अन्य निबंध हैं। बभरुवहन,उर्वशी (दोनों चित्र धार में संकलित है) इनके चम्पू काव्य हैं।

कामायनी नामक रचना के लिए जयशंकर प्रसाद जी को मंगल पारितोषिक पुरस्कार मिला। कामायनी खड़ी बोली का अनोखा महाकाव्य है। इस महाकाव्य में मनु और श्रद्धा नामक दो पात्रों को आधार बनाकर रचना की गई है। सुमित्रानंदन पंत जी ने कामायनी को हिंदी में तालमहल के समान माना है ।

प्रसाद जी की भाषा के कई रूप उनके काव्य की विकास यात्रा में दिखाई पड़ते हैं प्रसाद जी ने साहित्य जगत में अपनी लेखनी का प्रारंभ ब्रजभाषा से किया। फिर खड़ी बोली को अपनाकर उस भाषा को परिष्कृत, प्रवाहमयी, संस्कृतनिष्ठ भाषा के रूप में अपनी काव्य की भाषा बना ली। प्रसाद के शब्दचयन धनात्मक सौंदर्य से भी समन्वित हुई है। इनके प्रमुख तीन उपन्यास है -

कंकाल

कंकाल उपन्यास में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ रूप से उद्घाटित हुआ है। यह एक यथार्थवादी उपन्यास है। जयशंकर प्रसाद जी के समय में जो समाज था उस समाज के धर्म के क्षेत्र में हिंदू धर्म पालक वर्ग जो थे वह अपने आप को श्रेष्ठ मानते थे। इसी समय में हिंदू धर्म में आनेवाले कुरीतियों का बोलबाला थी। धर्म के नाम पर अनेक साधु संत लोग स्त्री को विशेषतः विधवा स्त्री को चुनकर अपने अवैध संतान उत्पन्न करते थे। समाज में धर्म परिवर्तन के नाम पर अनेक कुरीतियां जोरदार से चल रहा था। दलित समुदाय और गरीबी में जीने वाले लोग इस वातावरण से तंग आ चुके थे। उन लोगों ने पूंजीवर्गों के जूठो पर आधारित होकर जीवन बिताना पड़ा था। समाज में स्त्री को भोग की वस्तु तरह मानते थे। इसके साथ समाज में बाल विवाह जैसे बुरी पद्धति भी चल रही थी। विधवा स्त्री को तो समाज में कट्टर नियमो का पालन भी करना पड़ता था। तत्कालीन समाज में विभिन्न समाज सुधारको का भी प्रभाव था। युव वर्ग अपने समाज में व्याप्त कुरीतियों और धर्म के नाम पर होने वाले आडंबर को तोड़ने का कोशिश कर रहे थे। शिक्षा को महत्व देते हुए भी शिक्षा पाना कठिन था। प्रसाद कालीन यह समय एक संक्रमण काल से गुजर रहा था। इसी समाज को कंकाल उपन्यासों में जयशंकर प्रसाद जी ने वर्णन किए हैं। कंकाल उपन्यास में समाज की रूढ़ीग्रस्त आचरण ,धार्मिकता कट्टरता तथा थोथी नैतिकता पर जयशंकर प्रसाद जी ने गहरा रुप से बडा व्यंग्य किया है। समाज के खोखलेपन को वर्णन किया है। आदर्श प्रधान, निवृत्तिमूलक साधन के प्रति प्रसाद जी ने अपनी पूर्ण आस्था प्रकट की है। कोई भी साहित्यकार समाज से दूर रहकर साहित्य रचना असंभव हैं। समाज में होनेवाले घटनाओं को अपने साहित्य में अंकित करना है तो रचनाकार को उसी समाज में रहकर साहित्य रचना करना हैं। क्योंकि तब ही उसी समाज में घटित होने वाले घटनाओं को अपने साहित्य में अनायास समाज की दशा को चित्रित कर सकते है।

जयशंकर प्रसाद जी द्वारा रचित कंकाल उपन्यास 1930 में लिखी गई रचना है। इस उपन्यास में प्रसादजी ने भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण किए है। ऊपर से स्वर्णिम दिखाने वाले समाज नजदीख से देखे तो समस्याओं से भरी द्वंद्व और उसकी अनेक नकारात्मक विचारों से भरी हुई दिखती हैं। इन सभी विषय को लेकर जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी उपन्यास कंकाल व्यक्त किए हैं। उपन्यासों में प्रसाद जी प्रयाग ,काशी, हरिद्वार ,मथुरा ,वृंदावन के आसपास के क्षेत्र के द्वारा इसी बात को हमें इस उपन्यास के द्वारा दर्शाते हैं। कंकाल उपन्यास में सभी पात्र समाज के हर वर्ग को दर्शाते हैं। इसमें श्रीचंद पात्र व्यवसाई वर्ग के पात्र हैं। उस क्षेत्र के समस्याओं को इस पात्र दर्शाते हैं। समाज के अनेक अन्य कारणों से अपने प्रेम से अलग होनेवाली किशोरी नामक पात्र अपनी चारित्रिक दुर्बलता को लिए हुए एक अमीर औरत की स्थिति का चित्रण करती है। वह पात्र तो ऊपरी दिखावा से सज्जनों में

यश ,कीर्ति ,गौरव कमाने वाले वर्ग की प्रतिनिधि है। इसमें निरंजन नामक और एक पात्र आता है। वह एक ऐसा पात्र है वह असंतुष्ट परिवार के समस्याओंझेलते हुए निराश होकर साधु बनता है। यमुना नामक स्त्री पात्र इस उपन्यास में पुरुषों के शिकार हो जाती है। मंगल नाम का पात्र समाज सेवक और शोषक भी है। इस उपन्यास में किशोरी और श्री चंद्र पति पत्नी है। वे लोग संतान के आशा से साधु महात्मा निरंजन के पास आते हैं। पर किशोरी निरंजन के बाल्यावस्था के सहेली भी है। इसी कारण किशोरी श्रीचंद को छोड़कर निरंजन से संतान उत्पन्न करके अलग रहती है। यहां पर किशोरी भारतीय नारी के उस रूप का चित्रण करती है कि जो अपने प्रेम को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकती।

कंकाल उपन्यास में प्रसाद जी पवित्र स्थल कहने वाले जगहों पर अनैतिक कार्य का प्रभाव किस तरह हो रहा है इसका भी चित्रण किए हैं। कंकाल उपन्यास में तत्कालीन समाज की वेश्यावृत्ति का प्रभाव को चित्रित किए हैं। इससे तीर्थ स्थानों भी स्त्री के लिए अभिशाप बन जाता है। इसे तारा नामक पात्र के द्वारा चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में प्रसाद जी ने धर्म परिवर्तन को भी चित्रित किया है। इस उपन्यास में प्रसाद जी ने विभिन्न धर्मों के नाम पर होनेवाले अत्याचार ,अनाचार को ,हिंदू धर्म की आडम्बर भरी नीतियों को भी चित्रित किए हैं।

तितली

तितली उपन्यास में ग्रामीण जीवन के सुराधार के संकेत हमे मिलता हैं। यह एक आदर्शोन्मुख उपन्यास है। जयशंकर प्रसाद जी के तितली उपन्यास 19 34 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र जमींदार इंद्रदेव नामक पात्र है। उन्होंने विदेश से आते वक्त अपने साथ शैला नामक एक विदेशी युवती को भी ले आता है। प्रसाद जी युवती का संबंध को भारत से जोड़ा है। क्योंकि इनका जन्म भारत में ही हुआ था। इस उपन्यास में धारापुर के प्रमुख पात्र का नाम मधुआ अथवा मधुबन है। इनके पिता कभी शेरकोट दुर्ग के स्वामी बने थे। इस उपन्यास में बाबा रामनाथ का पात्र भारतीय संस्कृति की साक्षात भगवान बने थे। इनके पालिता पुत्री का नाम बंजो। अथवा तितली है। यही पात्र उपन्यास के प्रमुख है। इस उपन्यास के तितली के साथ मधुआ का विवाह होता है। मधूआ की एक बहन होती है। उसका नाम राजकुमारी है। वह विधवा थी। मधुआ इसके शरीर से धामपुर का मठ का प्रधान बनना चाहता है। बाद में इसका गला दबाकर भाग जाता है। यही से इनका संघर्ष जीवन शुरू होता है। कलकत्ता में वह जेब कतरों के साथ रहता हुए वह रिक्शा चलाता है। रिक्शा चलते समय वह पकड़ा जाता है आठ वर्ष जेल में रहकर वापस आता है। इस उपन्यास में इंद्रदेव नामक पात्र और उसके परिवार की कथा भी है। इसके माध्यम उपन्यास में एक धनी परिवार के पारिवारिक समस्याएं अंकित हुई है। प्रसाद जी के इस तितली उपन्यास में ग्रामीण जीवन व उनकी समस्याओं का समावेश हुआ है। भारतीय ग्रामों में आज भी संस्कृति के मूल तत्व विद्यमान है। यद्यपि वातावरण पर्याप्त विकृत और दूषित हो गया है। इस उपन्यास में एक और पात्र है मधुबाला। इंद्रदेव पात्र के द्वारा ग्रामीण जीवन को दर्शाते हैं। तो दूसरी ओर मधुबन के द्वारा कृषि भूमि हीन किसानों में क्रांति विद्रोह का अभाव को दर्शाते है। इंद्रदेव और शैला पात्र के द्वारा प्रसाद जी ग्रामोद्धार को भी दर्शाते हैं। बैंक ,अस्पताल ,ग्राम सुधार आदि की योजनाएं भी इन्हीं के माध्यम से होती है। विशेषकर मिटती हुई सामंतवादी प्रथा की सूचनाएं इस तितली उपन्यास में मिलता है। महाजनों का शोषण , और महंतों का पाखंड इसमें अंकित है। बाबा रामनाथ पात्र के द्वारा प्रसाद जी भारतीय उदार मानवीयता के प्रतिनिधि के पात्र है। जिन्हें कृषि परंपरा का आधुनिक प्रतीक कहा जाएगा। इंद्रदेव नामक पात्र के परिवार में नारीवाद का पारिवारिक विषमता के कारण टूटती हुई संयुक्त कुटुंब व्यवस्थाको दर्शाते है। उपन्यास के कथा का अधिकांश भाग ग्रामीण जीवन को दर्शाता है। इसके साथ नगर सभ्यता के संकेत भी मिलता है । जैसे कोलकाता नगरी के जीवन में मिलता है।

इरावती

इरावती उपन्यास एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ उपन्यास है। इनका यह उपन्यास अधूरा उपन्यास है। जो रोमांस के कारण इतिहासिका रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र उपन्यास है। प्रसाद जी के यह

उपन्यास शुंग-कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया अधूरा उपन्यास है। इसमें कुतुहलता, जिज्ञासा, रोमांस और मनोरंजन आदि तत्वों के साथ मनुष्य की जैविक आवश्यकतओ की विशुद्ध से उत्पन्न विकृत भावनाओं और कुंठित भावनाओं और उनके परिणामों को चित्रण किए गए हैं। इस उपन्यास में इरावती, कालिंदी , पुष्पपित्र, अग्निमित्र और बृहस्पति मित्र ,ब्रह्मचारी आदि चरित्र केवल कथा की वृद्धि नहीं करते हैं ,केवल रहस्य को घना करके उपन्यास रोमांचक नहीं होते बल्कि मानव मन का उद्घाटन भी करके यथार्थ के चरणों की ओर संकेत करते हैं।

इस उपन्यास में बौद्ध धर्म की जड़ता और रसनीयता के साथ ही साथ इसमें अहिंसा और करुणा का भी प्रतिबद्धता है। इससे उत्पन्न समस्याओं की ओर संकेत करते हैं। जो सत्याग्रह आंदोलन से पैदा हो रही है। मूल्यों के रूढ़ में बदलने की प्रक्रिया के संकेत के साथ प्रसाद जी इसमें रूढ़ियों और विकृतियों के प्रति विद्रोह को भी दर्शाते हैं। यह उपन्यास इतिहास ,कल्पना, आदर्श, यथार्थ, अतीत और वर्तमान आंतरिक और बाह्यता की द्विभाषी वक्ताओं के बीच से मनुष्य की रसधारा को भी वस्तु प्रस्तुत करता है। सामंती मूल्यों के साथ ही साथ सामाजिक परिवर्तन का संकेत करता है। जो वर्ग और जीवी की दीवारों को तोड़कर उपजता है और नए समाज में रूपांतरित होता है।

उपसंहार

इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा साबित करते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों मे ग्राम ,नगर ,प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। जो भावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की जिज्ञासा का समाधान करता है।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1 प्रसाद के संपूर्ण नाटक एवं एकांकी जयशंकर प्रसाद
2 प्रसाद समग्र सूर्य प्रसाद दीक्षित
3 हिंदी उपन्यास डॉ रामचंद्र तिवारी पृ 37,38
4 कंकाल जयशंकर प्रसाद पृ 22, 23, 24, 33, 48, 49, 50
5 हिंदी साहित्य कोश धीरेंद्र वर्मा भाग 2 पृ 230, 231
6 तितली जय शंकर प्रसाद
7 इरावती जय शंकर प्रसाद

रवीद्रनाथ टैगोर का साहित्य और उनका शैक्षणिक दृष्टि

डॉ. दीपा रागा
सहायक प्राध्यापक
बी.वी.बी महाविद्यालय बीदर,कर्नाटक

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के प्रसिद्ध टैगोर वंश में सन् 1861 ई. में कलकत्ता में हुआ था। टैगोर-परिवार अपनी समृद्धि, कला एवं विद्या के लिये सम्पूर्ण प्रदेश में लोकप्रिय था। टैगोर को परिवार में ही देशभक्ति, धर्मप्रियता एवं विद्या के गुण प्राप्त हुये। प्रारम्भिक काल में स्कूली शिक्षा में मिले कई अनुभवों से प्रेरणा लेकर आजीवन शिक्षा सुधार को अपना जीवन समर्पित किया एवं आदर्श शिक्षा संस्था शांति-निकेतन की स्थापना की जो कि आज विश्वभारती विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात् है। टैगोर की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु वे अपने भाई के साथ इंग्लैण्ड गये। 1880 ई. में टैगोर स्वदेश लौटे। उनको विद्यालय की शिक्षा के नाम पर कुछ भी प्राप्त न हुआ।

1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बोलपुर के समीप 'शांति निकेतन' की स्थापना की। आज इसकी लोकप्रियता भारत के साथ-साथ विदेशों में भी है। शीघ्र ही महान् कवि एवं साहित्यकार के रूप में उनकी ख्याति देश-विदेश में फैल गयी। उनकी विश्व प्रसिद्ध कृति 'गीताजंलि पर नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

नोबेल पुरस्कार विजेता कवि टैगोर ने कविता को प्राथमिकता दी, उन्होंने नाटककार, उपन्यासकार, लघु कथाकार, और गैर-काल्पनिक गद्य के लेखक, विशेष रूप से निबंध, आलोचना, दार्शनिक ग्रंथों, पत्रिकाओं, संस्मरणों और पत्रों के रूप में साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। इसके अलावा, उन्होंने खुद को संगीतकार, चित्रकार, अभिनेता-निर्माता-निर्देशक, शिक्षक, देशभक्त और समाज सुधारक के रूप में व्यक्त किया।

विलक्षण साहित्यिक और कलात्मक उपलब्धियों के व्यक्ति, टैगोर ने भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण में एक प्रमुख भूमिका निभाई और मोहनदास गांधी के साथ, आधुनिक भारत के वास्तुकारों में से एक के रूप में पहचाने जाने लगे। भारत के पहले प्रधान मंत्री, जवाहरलाल नेहरू ने डिस्कवरी ऑफ इंडिया में लिखा, "टैगोर और गांधी निस्संदेह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दो उत्कृष्ट और प्रभावशाली व्यक्ति रहे हैं। भारत के दिमाग पर, और विशेष रूप से लगातार बढ़ती पीढ़ियों का प्रभाव जबरदस्त रहा है। बंगाली ही नहीं, जिस भाषा में उन्होंने खुद लिखा, बल्कि भारत की सभी आधुनिक भाषाओं को उनके लेखन से आंशिक रूप से ढाला गया है। किसी भी अन्य भारतीय से अधिक, उन्होंने पूर्व और पश्चिम के आदर्शों में सामंजस्य बिठाने में मदद की है और भारतीय राष्ट्रवाद के आधार को व्यापक बनाया है।

टैगोर की काव्य संवेदनशीलता को आकार देने वाले शुरुआती प्रभाव उनके घर का कलात्मक वातावरण, प्रकृति की सुंदरता और उनके पिता के संत चरित्र थे। मेरे परिवार के अधिकांश सदस्य, उन्होंने "माई लाइफ" में याद किया, "कुछ उपहार थे कुछ कलाकार थे, कुछ कवि थे, कुछ संगीतकार थे और हमारे घर का पूरा वातावरण सृजन की भावना से व्याप्त था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर निजी शिक्षकों के अधीन हुई, लेकिन, टैगोर ने माई बॉयहुड डेज़ (1940) में लिखा, उन्हें "सीखने की मिलें" पसंद नहीं थीं जो "सुबह से रात तक पीसती रहती थीं।" एक लड़के के रूप में, उन्हें कलकत्ता के चार अलग-अलग स्कूलों में भर्ती कराया गया था, लेकिन वे उन सभी से नफरत करते थे और अक्सर नखरे करना शुरू कर देते थे। प्रकृति उनका पसंदीदा स्कूल था, जैसा कि उन्होंने "माई लाइफ" में दर्ज किया था "मुझे बचपन से ही, प्रकृति की सुंदरता, पेड़ों और बादलों के साथ घनिष्ठता की एक गहरी

भावना थी, और इसके अनुरूप महसूस किया। हवा में ऋतुओं का संगीतमय स्पर्श। ये सभी अभिव्यक्ति की लालसा रखते थे, और स्वाभाविक रूप से मैं उन्हें अपनी अभिव्यक्ति देना चाहता था। उनके पिता, देवेंद्रनाथ, जिन्हें लोकप्रिय रूप से महर्षि (महान ऋषि) कहा जाता है, एक लेखक, विद्वान और रहस्यवादी थे, जो कई वर्षों तक राजा राममोहन रॉय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज आंदोलन के एक प्रतिष्ठित नेता थे।

टैगोर ने बहुत कम उम्र में कविता लिखना शुरू कर दिया था, और अपने जीवनकाल के दौरान उन्होंने कविता के लगभग 60 खंड प्रकाशित किए, जिसमें उन्होंने कई काव्य रूपों और तकनीकों के साथ प्रयोग किया- गीत, सॉनेट, ओड, नाटकीय एकालाप, संवाद कविताएँ, लंबी कथा और वर्णनात्मक रचनाएँ। और गद्य कविताएँ। दुर्भाग्य से पश्चिम और टैगोर दोनों के लिए, मैरी एम। लागो ने रवींद्रनाथ टैगोर में बताया, "उनके कई पाठक कभी नहीं जानते थे – अभी भी नहीं जानते – कि उनकी कई कविताओं को संगीत के लिए शब्दों के रूप में लिखा गया था, संगीत के साथ और मौखिक कल्पना और लय को एक दूसरे का समर्थन करने और बढ़ाने के लिए डिज़ाइन किया गया है। उनका गीताबिटन (गीत संग्रह), जिसमें 2,265 गाने शामिल थे, जो सभी खुद से रचित, ट्यून किए गए और गाए गए थे, उन्होंने न केवल बंगाली संगीत में एक नई शैली शुरू की, जिसे रवींद्र संगीत के नाम से जाना जाता है, लेकिन, लागो के विचार में, "एक महत्वपूर्ण प्रदर्शन" बन गया। उनके सांस्कृतिक संश्लेषण की प्रभावकारिता में विश्वास। उन्होंने हाथ में आने वाली सभी संगीत सामग्री का उपयोग किया: शास्त्रीय राग, बंगाल के नाव गीत, वैष्णव कीर्तन और बाउल भक्ति गीत, त्योहार और शोक के गांव के गीत, यहां तक कि पश्चिमी धुनें भी उनकी यात्रा के दौरान उठाई गईं और सूक्ष्मता से अपने स्वयं के उपयोग के लिए अनुकूलित। प्रयोग और संश्लेषण की ऐसी भावना ने टैगोर के संपूर्ण रचनात्मक करियर को चिह्नित किया।

टैगोर ने लगभग 200 कहानियाँ लिखीं, जिनमें से सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी अनुवाद में उनके जीवनकाल के दौरान चार प्रमुख संग्रहों में दिखाई दीं: ब्रोकन टाईज़ एंड अदर स्टोरीज़ (1925), माशी एंड अदर स्टोरीज़ (1918), द हंग्री स्टोन्स एंड अदर स्टोरीज़ (1916), और बंगाल लाइफ की झलक (1913)। एक लघु कथाकार के रूप में, टैगोर न केवल बंगाली साहित्य में अग्रणी थे, बल्कि उन्होंने प्रेमचंद जैसे आधुनिक लेखकों और मुल्क राज आनंद, राजा राव और आर.के. नारायण। बोस ने एन एकर ऑफ ग्रीन ग्रास में स्वीकार किया कि रवींद्रनाथ "हमारे लिए लघु कहानी लेकर आए थे जब इंग्लैंड में इसे शायद ही जाना जाता था।" नरवणे ने एन इंट्रोडक्शन टू रवींद्रनाथ टैगोर में लिखा, "आधुनिक लघुकथा भारतीय साहित्य को रवींद्रनाथ टैगोर की देन है।

टैगोर के लेखन का एक बड़ा हिस्सा गैर-काल्पनिक गद्य-निबंध और लेख, धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ, पत्रिकाएं और संस्मरण, व्याख्यान और प्रवचन, इतिहास और विवाद, पत्र और यात्रा खातों के रूप में था। इनमें से, उनके दार्शनिक लेखन-साधना: द रियलाइज़ेशन ऑफ़ लाइफ(1913), राष्ट्रवाद (1917), व्यक्तित्व (1917), क्रिएटिव यूनिटी (1922), मनुष्य का धर्म (1931), और यूनिवर्सल मैन की ओर (1961) थे उनके विचार के केंद्र में। ये लेखन उपनिषदों की शिक्षाओं से गहराई से प्रभावित थे। हार्वर्ड व्याख्यान श्रृंखला में प्रकाशित साधना की प्रस्तावना में, उन्होंने स्वीकार किया, "लेखक का पालन-पोषण एक ऐसे परिवार में हुआ है जहाँ उपनिषदों के ग्रंथों का उपयोग दैनिक पूजा में किया जाता है; और उनके सामने उनके पिता का उदाहरण है, जिन्होंने दुनिया के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं करते हुए या सभी मानवीय मामलों में अपनी गहरी रुचि को किसी भी तरह का नुकसान नहीं होने दिया। उपनिषदों की शिक्षाओं में टैगोर को जिस चीज ने सबसे अधिक आकर्षित किया, वह थी प्रेम के माध्यम से सकारात्मक, व्यक्तिगत और साकार करने योग्य ईश्वर की अवधारणा। वह मानव-ईश्वर संबंध के आधार के रूप में प्रेम के वैष्णव आदर्श के प्रति भी आकर्षित थे। उनका मानना था कि रंग, ध्वनि और स्पर्श की समझदार दुनिया में मनुष्य और भगवान के बीच प्रेम-नाटक का अभिनय किया जा रहा है। वह न केवल मनुष्य की दिव्यता के प्रति सचेत थे बल्कि ईश्वर की मानवता के प्रति भी सचेत थे। सोनार तारी में उन्होंने लिखा, "मैं भगवान को जो कुछ भी दे सकता हूं वह मैं मनुष्य को देता हूं और भगवान को जो कुछ भी मैं मनुष्य को दे सकता हूं वह

देता हूं। मैं परमेश्वर को मनुष्य और मनुष्य को परमेश्वर बनाता हूं।" ऐसा दार्शनिक ज्ञान उनके कई गीतों और नाटकों में परिलक्षित होता था।

रवीन्द्रनाथ टैगोर जिस परिवार में जन्म लिए थे उस परिवार की पारिवारिक पृष्ठभूमि दर्शन, विज्ञान, कला, संगीत, कविता, सम्पन्नता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध थी। उनका परिवार विभिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों का केन्द्र था। टैगोर शीघ्रता से किसी भी बात को ग्रहण करने की क्षमता थी जिससे वे महान् शिक्षा शास्त्री व साहित्यकार बने। टैगोर ने शिक्षा के सिद्धांतों की खोज अपने अनुभव से की है उन्होंने भारतीय शिक्षा में नये प्रयोगों की शुरुआत की। उन्होंने भारतीय व पाश्चात्य विचारों का सम्मिश्रण किया एवं अपने शिक्षा सिद्धांतों की खोज स्वयं की। जिस समय भारत में विदेशी शिक्षा का अंधानुकरण किया जा रहा था उस समय उन्होंने विदशी शिक्षा को पूर्णरूप से अपनाने से मना किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार में शिक्षा का रूप व अर्थ अत्यन्त व्यापक है। शिक्षा को व्यापक अर्थ के अन्तर्गत टैगोर ने शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को ध्यान में रखा है। टैगोर कहते है की सर्वोत्तम शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है। शिक्षा मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान देकर उसे जीवन एवं मरण से मुक्ति प्रदान करती है। टैगोर ने शिक्षा के इस प्राचीन आदर्श को भी व्यापक रूप दिया है। उनका कहना है कि शिक्षा न केवल आवागमन से वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और मानसिक दासता से भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती है। अत: मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस ज्ञान का संग्रहण करना चाहिये जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है, यही सच्ची शिक्षा है। टैगोर कहते है की सच्ची शिक्षा संग्रह किये गये लाभप्रद ज्ञान के प्रत्येक अंग के प्रयोग करने में, उस अंग के वास्तविक स्वरूप को जानने में और जीवन में जीवन के लिये सच्चे आश्रय का निर्माण करने में है। शिक्षा के व्यापक अर्थ के अंतर्गत टैगोर ने शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को स्थान दिया है। **रवीन्द्रनाथ** टैगोर शिक्षा के उदेश को यह मानने थे कि बालक के अन्दर सभी सुषुप्त शक्तियों का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। टैगोर एक महान् व्यक्तिवादी थे। अत: वे व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास को विशेष महत्व देते थे। वे व्यक्ति को सम्मान तथा स्वतन्त्रता देने के पक्षपाती थे। इसके अतिरिक्त वे शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के मस्तिष्क को स्वतन्त्रता प्रदान करना मानते थे जिससे वे पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी स्वतन्त्र रूप से अपना विकास कर सके। टैगोर व्यक्तिवादी होने के साथ-साथ समाजवादी भी थे। वे जितना महत्व व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के विकास को देते थे उतना ही महत्व वे समाज तथा सामाजिक सेवा को भी देते थे। वे व्यक्ति की आध्यात्मिकता पूर्णता के लिये उसका सामाजिक विकास आवश्यक मानते थे। अत: शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को एक ऐसे सामाजिक बन्धन में बाँधना चाहते थे जिससे व्यक्ति सामाजिक विकास करने के लिये प्रयत्नशील रहे। अत: उन्होंने अपनी संस्था में सामूहिक कार्यों एवं जन सेवा को अधिक महत्व दिया।

टैगोर यह मानने थे कि बालक के अन्दर सभी सुषुप्त शक्तियों का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। टैगोर एक महान् व्यक्तिवादी थे। अत: वे व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास को विशेष महत्व देते थे। वे व्यक्ति को सम्मान तथा स्वतन्त्रता देने के पक्षपाती थे। इसके अतिरिक्त वे शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के मस्तिष्क को स्वतन्त्रता प्रदान करना मानते थे जिससे वे पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी स्वतन्त्र रूप से अपना विकास कर सके। आदर्शवादी होने के नाते टैगोर ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का उद्देश्य नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास होना चाहिये। अपने लेखो में उन्होंने अनेक नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की है और इसकी प्राप्ति के लिये आन्तरिक शक्ति, आत्मानुशासन, धैर्य एवं ज्ञान को परम आवश्यक बतलाया है।

मुख्य रूप से रवीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षा के संबंध में यह मानते है कि, शिक्षा का एक मुख्य उद्देश व्यक्ति को राष्ट्र की सेवा के लिए तैयार करना है और शिक्षा मानव उत्थान, संस्कृतिक प्रतिनिधित्व, सद्भाव और बौद्धिकता के लिए है। शैक्षिक संस्थानों को एक व्यक्ति में सोच और कल्पना की शक्ति का निर्माण करना चाहिए और खुद को

मानव समाज के एक आत्मनिर्भर निर्माण खंड और पूरे राष्ट्र के एक रचनात्मक कैनवास में बदलने में मदद करनी चाहिए।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1) रवींद्रनाथ टैगोर के दर्शन- डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन प्र. प्रभात प्रकाशन, 2017

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में आदर्शवाद

कविता यू.पी.
शोध छात्रा, शिवमोग्गा।

कोई भी साहित्यकार जीवनगत अपने अनुभवों को, मानवीय संवेदनात्मक संबंधों और कल्पना के साथ जोडकर साहित्य रचते हैं। गद्य साहित्य आधुनिक काल की देन है। इसका विकास और विस्तार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, डां.श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद जैसे कृतिकारों की लेखनी से हुई थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जयशंकर प्रसादजी, छायावाद के शीर्षस्तम्भ कवि है। कविता और नाटक के अतिरिक्त हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में भी उनकी उल्लेखनीय भूमिका रेखांकित की गई है। छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल इन पाँच कहानी संग्रहों के द्वारा, हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाए हैं।

प्रो० मोहनलाल 'जिज्ञासु' कहते है कि-१ **" आधुनिक हिन्दी-कहानी साहित्य में निर्माताओं में अपने ढंग की विशेष कहानियाँ लिखने में उनका नाम ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से सर्वप्रथम आता है। एक ऐसे समय में, जब हमारी कहानी की कोई निश्चित परम्परा नहीं, उसे साहित्यिक रुप नहीं मिल पाया था और उसका शैली विषय का कोई आदर्श उपस्थित नहीं किया गया था। प्रसाद साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और उन्होंने इस समस्त अभावों की पूर्ति की।.."** ऐसे आदर्शवादी कहानिकार प्रसादजी की कहानियों में मानवीय संवेदना की परछाई भी दिखाई देती है, और इनके अधिकांश कहानियों में प्रेम, कर्तव्य, करुणा, त्याग, देश के प्रति समर्पण भाव आदि आदर्श तत्वों का वर्णन मिलतें हैं।

प्रसादजी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक कहानी **'पुरस्कार'** है। इसमें प्रेम और कर्तव्य निष्ठा के बीच में झुलती नायिका का चित्रण दर्शाती है। नायिका 'मधूलिका' कृषक कन्या है। परम्परनुसार कोशल राजा, इस बार कृषक बनकर उनका खेत चुना और नियमानुसा उसे चौगुना मूल्य देता है। लेकिन मधूलिका उसे राजा को न्योछावर करते हुए अपना आदर्श दिखाती है कि- २ **"देव! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है ; इसलिए मूल्य स्विकार करना मेरी सामार्थ्य के बाहर है।"** यह कहानी के अंत में प्रसादजी ने कथा नायिका का चरित्र प्रदान और आदर्शवादी बनाकर कहानी को प्रभावशाली बनाया है। जब मधूलिका व्यक्तिगत प्रेम और राष्ट्रप्रेम का मार्मिक संघर्ष में पड जाती है तब, वह राष्ट्रप्रेम को सर्वोपरि मानकर आदर्श तत्व को अपनाती है। मगध का राजकुमार 'अरुण' के प्रेम में मंत्रमुग्ध मधूलिका उसके विद्रोही काम में मदद करने जाती है लेकिन, अंत में राष्ट्रप्रेम और अपना कर्तव्य भाव की पुर्नजागृती से वह कोशल के सेनापति के सामने चिल्लते हुए कहती है कि -३ **" बांध लो। मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।"** यह कहते हुए अपने आप शरण होती है।

वर्ग संघर्ष और क्रांति, सामाजिक विधि निषेधों का परित्याग और धर्म निरपेक्षता का प्रयोग कहानी **'विराम चिन्ह'** में दिखाई देता है। इसमें निम्न जाती की बुढिया, देव-मंदिर के बाहर बैठकर केलों, पपितों और कुछ फ़लों को बेचती रहती है। लेकिन कोई उसके पास नहीं खरीदते क्योंकि, वह अछूत थी। इसलिए उसका परिवार भूखा रहना पडता था। जब अपना शराबी लडका 'रघवा' (राधे) आकर पूछता था कि –४ **" सब लोग जाकर खा-पीकर सो रहें हैं। तू यहाँ बैठी हुई देवता का दर्शन कर रही है। अच्छा, तो आज भी कुछ खाने को नहीं?"** तब बुढिया कहती है कि- ५ **" बेटा, एक पैसे का भी नहीं बिका, क्या करूँ? अरे, तो भी तू कितनी ताडी पी आया है"** । उस गाँव में अछूतों को मंदिर में प्रवेश निषेध था कि; राधे और उस गाँव के महन्त के जमादार

'कुंजबिहारी' के बीच में हमेशा संघर्ष होता था कि- " **तू होता कौन रे!** और **" अकेले-अकेले बैठकर भोग – प्रसाद खातें-खातें बच्चू लोगों को चरबी चढ गई है। दरशन नहीं रे-तेरा भात छीनकर खाऊँगा, कोन रोकता है।"** इस तरह प्रसादजी की कल्पनाशक्ती आदर्शवाद से अनुप्रेरित थी। इस कहानी के अंत में उन्होने वर्ग-संघर्ष की पीडा के प्रति आदर्श चित्रण चित्रित किया है। जब राधे सैकडों अछूतों के साथ मन्दिर में प्रवेश करने का साहस किया तब, कुंजबिहारी ने उसके बगल से आकर उसे मार देता है। बुढिया, बेटे को रक्त से लथपथ हुआ देखते हि रोते हुए उसे उठाकर- **७" राधे की लोथ मन्दिर में जाएगी"।** कहते हुए मन्दिर के प्रवेशद्वार की ओर बढती है।

हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार प्रसादजी की और एक कहानी **'व्रतभंग'** है, जिसमें सामाजिक और धार्मिक विचारधारा है, बुरा आचरण पर भारतीय नारी का विजय और पुरुषों का कर्तव्य बोध का आदर्शवादी तत्व का चित्रण दिखाई देता है। इस कहानी में 'कपिंजल' एक दरिद्र व्यक्ति होता है, और इसी के अपमान की आशंका से वह अपने दोस्त, पाटलीपुत्र का धनकुबेर 'कलश' का मासूम पुत्र 'नंदन' को दंड देने के लिए एक स्वांग रचाता है। वह एक साधु बनता है और नंगा रहता है। कुछ सालों के बाद कलश अपने पुत्र और पुत्र वधु, मगद के महाश्रेष्ठी 'धनंजय' की बेटी 'राधा' को लेकर साधु-दर्शन के लिए जाता है। वहाँ राधा दूर से ही नंगे साधु को देखती है, और उसके सामने जाने केलिए लोक लाज के कारण मना करती है। इसलिए साधु, कलश और नंदन उसे कुलक्षण समझते हैं। राधा ससुर को समझाते हुए कहती है कि- ८ **" नहीं पिताजी वह स्वयं दुर्विनीत है। जो स्त्रियों को आते देखकर भी साधारण शिष्टाचार का पालन नहीं कर सकता, वह धार्मिक महत्मा तो कदापि नहीं"।** और कहा कि **" सिद्दि यदि इतनी अधम है धर्म यदि इतना निर्लज्ज है, तो वह स्त्रियों के योग्य नहीं पिताजी! धर्म के रुप में कहीं आप भय की उपासन तो नहीं कर रहें है"।** यह सुनकर साधु को तीव्र अपमान होता है, उसे उसके ससुर और उसके पति नंदन से दूर कराता है। इसीतरह साधु अपना बाल सखा नंदन पर प्रतिशोध लेने का कोशिश करता है।

कहानी के अंत में गंगा और सोना नदी में बाढ आ जाती है। कलश किसी का मदद नहीं करता है। ना चतुर, ना होशियार और हमेशा मनोविलास में रहनेवाला नंदन बाढ पीडितों को बचाने का प्रयास करता है, तब उनकी पत्नी राधा से मुलकात होती है। दोनों मिलकर बाढ पीडितों की सेवा करते रहते हैं। बेशुद्ध पडे नंगे साधु को भी बचाकर उसे वस्त्र पहनाते हैं। यह कहानी नंदन पात्र के द्वारा संदेश देती है कि- ९**" कपिंजल! यह राधा का गृह है, तुम्हें उसके आज्ञानुसार यहाँ रहना होगा। छोडों पागलपन! चलों, बहुत से प्राणी हम लोगों की साहयता के अधिकारी है"।** इस तरह प्रसाद्जी अपनी कहानियों में असाहयता पर सहायता का, सामाजिक बुराई पर भलाई का, अधर्म पर धर्म का विजय प्रमाण सिद्ध किये हैं।

मानवियाँ संवेदनात्मक भावनाओं में करुणा, स्नेह, सहृदयता और उदारता सिद्दि प्राप्त किए प्रसादजी की कहानी **' मधुआ '** है। प्रस्तुत कहानी एक आम आदमी का सजीव चित्रण देती है। एक गरीब शराबी के माद्यम से प्रसादजी करुणा भाव की शक्ति का प्रभाव दिखाते हैं। जब शराबी को एक अनाथ 'मधुआ' मिल जाता है तब, उसके मन में करुणा भाव जागृत होता है। रोता हुआ मधुआ से पूछता है कि- **१०" कुछ खाया नहीं ; इतने बडे अमीर के यहाँ रहता है और दिन भर तुझे खाने को नहीं मिला?"** और उसे खाने को पराठे का टुकडा देते हुए कहा **११ " तब तक तू इसे चबा, मैं तेरा गढा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ-सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोएगा तो खूब पीटूँगा। मुझसे रोने से बडा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का.."।**

यह कहानी एक छोटा मधुआ के द्वारा एक शराबी, नालायक, फ़िरते रहने वालों के हृदय और उसकी जिन्दगी को परिवर्तित कर आदर्श तत्व को दर्शाती है। अंत में शराबी मधुआ को लेकर काम करने का निर्णय लेते हुए कहता है कि- **१२ " अच्छा आज से मेरे साथ-साथ घूमना पडेगा यह कल तेरे लिए लाया हूँ! चल, आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा। कहाँ, इसका कुछ ठीक नहीं। पेड के नीचे रात बिता सकेगा न ?"**

सत्य घटना पर आधारित कहानी **'गूदडसाई'** है, जिसमें एक सीधा-सादा आदर्शवाद, आरंभिक बचपन का मासूमीयत क सरल-सहज स्पंदन है, कल्पना से रहित अनुभूती, द्वन्द्व रहित भाव और मानवीय प्रधान भावनाओं का अभिव्यक्ति है। इस कहानी में कथा नायक वैरागी **'साई'** है। वह जब छोटा लडका 'मोहन' के घर जाता था तब, मोहन उसके अभिमान से उसे खाने के लिए कुछ दिया करता था। लेकिन उनके आर्यसमाजी पिता ने उन दोनों की मैत्री को सहन नहीं कर सका। साई एक करुणासागर, दयामयी और आदर्शवादी थे।

एक बार जब साई पर एक शरारती लडके ने पिछा किया और मनोविनोद के लिए उसके चीतडे को लेकर भाग रहा था तब, साई उसके पीछा किया और गिर पडा और उसे चोट लगी। यह देखकर मोहन के पिताजी ने उस शरारती लडके को पकडकर मारने गये, तब साई उसे छुडाने का प्रयास करते हुए कहा कि-**१३ " मत मारो, मत मारो, चोट लगती होगी!"** यह घटना से मोहन के पिता का हृदय परिवर्तित हुआ और साई का आदर्श पर मंत्रमुग्द होकर आश्चर्य से कहा कि- **१४ " गूदड साई! तुम निरे गूदड नही ; गुदडी के लाल हो!"** इसी तरह प्रसादजी ने इस कहानी में वात्सल्य, स्नेह तथा दिव्य भक्ति में तल्लीन साई के आदर्श व्यक्तित्व को प्रभावशाली रुप से चित्रित किया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि- जयशंकर प्रसादजी मनुष्य के मानवीय भावनाओं के प्रति आदर्श स्थापित करने वाले हिन्दी के प्रसिद्द कहानीकार है। 'नन्द दुलारे वाजपेयीजी कहते है कि- **१५ " प्रसादजी की आखायिकाएँ या छोटी कहानियाँ कोमल, कल्पना विशिष्ट, किन्तु उत्यानमूलक भावनाओं से भरी पडी है"।** यह स्पष्ट है कि – प्रसादजी की कहानियों में मानवीयता, राष्ट्रीयता, धार्मिक सहिष्णुता, त्याग तथा बलिदान आदि भावों का आदर्श तत्व या मूल्यों का अभिव्यक्त है। और इनकी रचनाओं में ऐतिहासिक परंपराओं के रक्षण के साथ-साथ आदर्श प्रेम का साक्षात्कार भी हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ:

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र : पृष्ट : २०३
२. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : पुरस्कार : पृष्ट :१४०
३. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : पुरस्कार : पृष्ट : १४६
४,५ जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : विराम विराम-चिन्ह : पृष्ट : १२८
६. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : विराम विराम-चिन्ह : पृष्ट : १२९,३०
७. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : विराम विराम-चिन्ह : पृष्ट : १३०
८. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : व्रत भंग : पृष्ट : १३४
९. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : व्रत भंग : पृष्ट : १३८
१०.११. साहित्य वैभव : जयशंकर प्रसाद : मधुआ : पृष्ट : १४२,४३
१२. साहित्य वैभव : जयशंकर प्रसाद : मधुआ : पृष्ट : १४६
१३. १४. जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियाँ : जयशंकर प्रसाद : गूदडसाई : पृष्ट : १९
१५. हिन्दी साहित्य : बिसवी शताब्दी में नन्ददुलारे वाजपेयी : पृष्ट : १४१

जयशंकर प्रसाद के कामायनी महाकाव्य में आधुनिक समस्याएं

डॉ. श्याम गायकवाड
हिंदी अध्यापक
बी आर बी कॉलेज ऑफ कॉमर्स, रायचूर

साहित्य अपने युग की प्रतिध्वनि होता है। साहित्यकार अपने युग से विमुख रहकर साहित्य सर्जन नहीं कर सकता। युग की पुकार, युग के स्वर और की समस्याएं उसके कृति को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। महाकाव्य के रचनाकार की अमर लेखनी तो युगीन इन विशेषताओं को आत्मसात किए बिना अग्रसर हो ही नहीं सकती। क्योंकि महाकवि त्रिकालदर्शी होता है। अतीत, भविष्य और वर्तमान तीनों उसकी कृति में साकार हो उठती है। भले ही अपने महाकाव्य में वहां अतीत का चित्रण करें अथवा भविष्य का, वर्तमान की अवहेलना करके आगे नहीं बढ़ सकता है। वाल्मीकि,कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपियर आदि महाकवियों की कृतियां इस सत्य की प्रमाण है। ये सभी महाकवि अपनी युग की उपज है। और उनकी कृतियां तत्कालीन युग जीवन से प्रभावित है। इसी परंपरा की एक कड़ी के रूप में जयशंकर प्रसाद भी है। जिनकी कामायनी युग की ज्वलंत समस्याओं को अपने में समाविष्ट करके हमारे समक्ष उपस्थित हुई है। कामायनी में कवि ने जिन घटनाओं को अपनी कल्पना की तुलिका से अंकित किया है। वे भी युग की समस्याओं के रंग में रंगी हुई है। डॉ. रामलाल सिंह ने इस संबंध में सत्य ही लिखा है – "कामायनी की आधिकारिक काल्पनिक घटनाएं आधुनिक समस्याओं की ओर संकेत कर रही है। "

जयशंकर प्रसाद को किसी भिन्न युगीन इन परिस्थितियों में जीवनयापन करना पड़ता तो कामयानी अपने प्रस्तुत स्वरूप से नितांत परिवर्तित होती । आज हमें कामायनी में बुद्धिवाद का विरोध, भौतिकवाद का खंडन, निरंकुशता के विरोध क्रांति का उद्घोष एवं मूर्ति मती नारीत्व श्रद्धा की स्थापना आदि के जो स्वर् सुनाई पडते हैं, वे योग के प्रभावो के ही सूचक है। वैज्ञानिक अविष्कारों की निरंतर बढ़ती हुई उन्नति न आज मानव - मानव में जो दूरी स्थापित कर दी है। और मनुष्य को अत्यंत स्वार्थी,निर्भय,यांत्रिक बना दिया है। उसे देख प्रसाद जी का हृदय कराह उठा। मानव की इस दुःखद परिस्थिति को देख उनके अंतर में कसक और नयनो में अश्रु–मुक्ताओं की सृष्टि हुई और उनकी लेखनी से निसृत हो उठी आनंदवाद के पथ का प्रदर्शन करनेवाली कामायनी भौतिकता और बुद्धिवाद के दूषित प्रभाव ने मानवता को जिस प्रकार व्याधिग्रस्त कर रखा है, उसे दलित - पीड़ित मानवता को बचाने के लिए कामायनी की रचना हुई है। नारी का गरिमामय उदात्त स्वरूप यदि आज नारीत्व के गुणों से रहित, मलिन और अवदमीत ना हो गया होता तो नारीत्व के दिव्य गुणों की विभूतियों से आपूर्ण श्रद्धा का चरित्रअंकित करने की प्रेरणा कामायनकार को मिलती शासकवर्ग की निरंकुशता यदि चरम सीमा पर न पहुंची होती और उनकी अधिकतम भोग की लालसा यदि प्रबलतम न हो गई होती तो क्रांति और विप्लव द्वारा निरंकुशता और आबाध अधिकार का विरोध भी कवि ने न किया होता। वस्तुतः कामायनी में जिन काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि हुई है, वे वास्तविकता के धरातल पर ही प्रतिष्ठित है। उनकी सृजन - प्रेरणा आधुनिक युग की समस्याओं ने ही कवि को प्रदान की है। आधुनिक बुद्धिवादी युग के प्रभाव ने ही कामायनी को उसके वर्तमान रूप में हमारे समक्ष रखा है। प्रसादजी को यह कृति जहां एक ओर आदि मानव मनु और आधानारी श्रद्धा के कहानी है, वहां दूसरी ओर वह वर्तमान युग का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचना है। गोविंद राम शर्मा ने सत्य ही लिखा है – " प्रसादजी की कामायनी आधुनिक युग की प्रतिनिधि रचना है। उसमें आज के युग की अनेक समस्याओं का समावेश दिखाई देता

है। शासक और शासित की समस्या, पूंजीपति और श्रमिकों की समस्या एवं जाति वर्गगत भेद की समस्या जैसे वर्तमान युग की समस्याओं का चित्रण कामायनी में प्रमुख रूप से हुआ है। "

कामायनी महाकाव्य में आने वाले कुछ समस्याएं इस प्रकार हम स्पष्ट कर सकते हैं।

ऊंच-नीच की समस्या :- कामायनी में काम की निम्न उक्ति आधुनिक युग के भारत की जाति- पाती का विरोध समस्या पर प्रकाश डाल रही है —

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि।
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रही वृष्टि।
अनजान समस्याएं गढती रचती हो अपनी ही विनिष्टि।
कोलाहल कलह आनंद चले,एकता नष्ट हो,बढ़े भेद।
अभिलाषता वस्तु तो दूर रहे, मिली अनिश्चित दुखद खेद
हृदय का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता।
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता पड़ता।
तब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहोगे सदा तुष्टि।
दुख देगी,यह संकुचित दृष्टि।"

इस पंक्ति द्वारा कवि ने बताया है कि जो जाति व्यवस्था समाज को छुआछूत और ऊंच-नीच के दोषों से मुक्त होकर सभी लोग मिलजुल कर रहने से सबका भला होगा ऐसा कवि का कहना था। और और संकुचित दृष्टि से बाहर आकर सभी लोग प्यार से रहे।

अमीर - गरीब की समस्या :- आज का युग बुद्धिवादी भौतिक युग है। प्रसाद जी ने कामायनी में इस युग का चित्रण सारस्वत प्रदेश के दृश्य द्वारा किया है आज मानव विज्ञान के उपकरणों द्वारा स्वयं को नित्य प्रति समृद्ध बनता जा रहा है।वह जल, प्रकाश, अग्नि आदि प्राकृतिक उत्पादन से अब ईश्वर पर अवलंबित न रहकर स्वावलंबी बन गया है। किंतु यह सारी सुख सुविधा धनीकों के लिए हैं। श्रमिक वर्ग के लिए सुख सुविधा सुलभ तरीके से नहीं मिल पाते। इस भौतिकवाद सभ्यता के विकास का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य- मनुष्य के हृदय में एक दूसरे के प्रति दूरी बहुत बढ़ रही है —-

"अपनी-अपनी पड़ी सभी को,
छिनन स्नेहा का कोमल तंतु ।"

इस प्रकार सारस्वत प्रदेश के दृश्य द्वारा कवि ने वर्तमान भारत का चित्र उपस्थित करते हुए आमिर गरीबों का भेद भाव स्पष्ट किया।

स्त्री की समस्या :- देश की वर्तमान स्थिति किसी भी देश- प्रेमी युवक के हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर सकती है और भारत के गौरवपूर्ण अतीत को याद कर वह कामायनी के मनु की भांति कह सकता है —

"कीर्ति दीप्ति शोभा थी नाचती,
अरुण किरण सी चारों ओर।"

आज मानव अपनी सुख सुविधा की इच्छा और आकांक्षा की अभिव्यक्ति कर रहे कामायनी के मनु। मनु का बर्बर शासन अंग्रेजों के शासन का प्रतीक है। श्रद्धा और इडा के द्वारा कवि ने स्त्रियों की समस्या पर प्रकाश डाला है। पुरुष के अत्याचारों से त्रस्त नारी को पुनः उसके गौरव पथ पर आसीन कराना ही कवि का हेतु रहा है।

सुख भोग की समस्या :-आधुनिक युग की समस्याओं का चित्रण कामयानी में दिखाई देता है। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या बुद्धिवाद और भौतिकवाद को लेकर है। आज का मानव भौतिक सुख के लिए दर-दर भटक रहा है और उसी के द्वारा सुख की प्राप्ति करना चाहता है। किंतु क्या भौतिकवाद आज का संबल ग्रहण करके आज के मानव को वांछित आनंद की उपलब्धि हो रही है। क्या भौतिकता मानव का रक्षक रक्षक रक्त बनाने के

स्थान पर भक्षक नहीं बन रहे हैं क्या सुख की खोज में भटकते हुए मानव को अंततः दुख की प्राप्ति नहीं हो रही है आदि युग की ज्वलंत समस्याओं को प्रसाद जी की सूक्ष्म दृष्टि नहीं देखा और अनुभव किया प्रथा कामायनी में उनका समाधान करने का प्रयास किया। कवि का निष्कर्ष यही है कि भौतिकता मानव को सुख और आनंद प्रदान करने में समर्थ नहीं हो सकती। भौतिकता के दुष्परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाते हैं और वे रक्तपात, अत्याचार, अन्याय और स्वार्थपरता के रूप में प्रकट होते हैं। कामायनी के नायक मनु ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी आधुनिक बुद्धिवादी और भौतिकवादी मानव का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। यह सुख की लालसा में भटकते है और उन्हें अतृप्ति ही मिलती है। श्रद्धा द्वारा निर्मित सुखपूरित घर संसार को छोड़ वे नि:सीम और निर्वाद अधिकारों व सुखो की लालसा में सारस्वत नगर पहुंचते हैं । अपने बुद्धिबल द्वारा वहां वे भौतिक सभ्यता का प्रसार करते हैं किंतु उनकी निरंकुशता, एवं उत्तरदायित्व हीनता नगर में विप्लव की सृष्टि कर देती है कर देती है। मनु बुद्धि एवं भौतिकता का दामन छोड़ पुन: श्रद्धा का अवलंब ग्रहण करते हैं। और वह उन्हें आनंद का मार्ग दिखाती हैं ।इस प्रकार कवि ने यह स्पष्ट किया है कि यांत्रिक सभ्यता क्षणभंगुर है। उसे सप्राण बनाने के लिए वांछनीय है कि आध्यात्मिकता का संबल न छोडा जाए। अध्यात्मवाद ही प्रेम, क्षमा, समानता और उदारता व्यापक भावनाओं को स्थायि बनाता है। भौतिकता बिना अध्यात्मक के खोखली है, निर्जीव है। दोनों का सम्मिलन ही मानवता का कल्याण कर सकता है। अध्यात्म के अभाव में शासक वर्ग में निरंकुश हो उठता है और परिणामस्वरूप विप्रो की आग में भड़क उठती है। अतएव समाज में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए तथा मानवता के कल्याण के लिए भौतिकता और आध्यात्मवाद का संयोग दिखाई देता है।

जयशंकर प्रसाद कामायनी लिख रहे थे उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन था। ब्रिटिश शासक वर्ग स्वार्थ साधना के लिए हर प्रकार के उचित अनुचित उपायों को अपनाकर जनता के हित का उसे कोई ध्यान न था। उदासीन जनता इन अत्याचारों को शुद्ध भाव से सहन कर रहे थी और विद्रोह और क्रांति की चिंगारियां उत्पन्न हो रही थी। शासक और शासित की यह समस्या कवि की दृष्टि से अछूत न रही और अपने महाकाव्य में उसने इसे व्यापक रूप में उपस्थित किया। मनु सारस्वत वासियों पर एहसान जताते है कि उन्होंने ही उनको सभ्य बनाया है। मनु की यह उक्ति अंग्रेज शासकों की उक्ति से भिन्न नहीं है —

"आज न पशु है हम या गूंगे काननचारी ।
यह उपत्कृति क्या भूल गए तुम आज हमारी।।"

आम जनता के ऊपर मनु महाराज का शोषण तथा अधिकार भारत के अंग्रेज शासकों की लालसा से भिन्न नहीं है सच तो यह है कि ब्रिटिश शासकों की अत्याचारी शासन नीति में ही जयशंकर प्रसाद जी को इस प्रकार के दृश्य अंकन की प्रेरणा दी अधिकार लिप्सा से ग्रस्त मनु का कथन है —

" मैं शासक मैं चीर स्वतंत्र तुम पर भी मेरा,
हो अधिकार असीम सफल हो जीवन मेरा।"

राजा की अनदेखी प्रजा के दिल में संघर्ष और कांति की भावना उत्पन्न करती है। कवि के युग में शासकों की वाणी मनु की इस वाणी से भी नहीं थी —

"जो मेरी है सृष्टि उसी से भीत रहूं मैं।
क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहू मैं।।"

वर्तमान में नागरिक सभ्यता अत्यंत आडंबरपूर्ण और विकृत हो उठी है। लोग नगरों को छोड़कर गांव की ओर जा रहे हैं। यही संकेत कामायनी में भी हमें मिलता है। जब मनु सारस्वत नगर को छोड़कर कैलाश आश्रम पर पहुंचते हैं और वाहां जाकर पुलक और पवित्रता का अनुभव करते हैं।

वर्तमान में नारी जागरण की भावना सर्वत्र प्रसारित हो रही है। कामायनी में भी नवयुग की इस भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। ' श्रद्धा ' के रूप में भारतीय नारी का आदर्श रूप कवि ने हमारे सामने उपस्थित किया है। दया,

क्षमा, ममता, और अगाध विश्वास की प्रतिमूर्ति है प्रसादजी की नारी। वे उसे केवल वासना- पूर्ति का साधन ही नहीं मानते अपितु इन निकृष्ट विचारों का विरोध करते हुए नारी को गौरव से सम्मानित करते हैं। नारी के रूप- चित्रण में उन्होंने एद्रीयता को प्रधान नहीं माना। नारी के रूप का चित्रण अत्यंत भव्य रूप में किया है —

"नित्य यौवन छवि से ही दीप्ति,
विश्व की करुण कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।।"

जयशंकर प्रसाद नारी का तिरस्कार करने वालों की आलोचना करते हैं —

"मनु तुम श्रद्धा को गए भूल उस पूर्ण आत्मविश्वासमाय को उड़ा दिया था समझ तूल।"

आधुनिक नारी की स्वतंत्रता को लेकर आज के युग में दो विचारधाराएं चल रही है। पाश्चात्य नारी के सम्मान उसका पूर्ण स्वतंत्र स्वरूप तथा भारतीय आदर्शों की गरिमा से मंडित भव्य उदात्त रूप। प्रसादजी ने नारी के इन दोनों रूपों को इडा और श्रद्धा के माध्यम से प्रदर्शित किया है। श्रद्धा के चरित्र द्वारा नारी के आदर्शों की अभिव्यक्ति का चित्रण का स्वरूप कवि ने प्रस्तुत किया है।

कामायनी में आधुनिक युग की एक प्रधान समस्या पूंजीपति और श्रमिक वर्ग के संघर्ष को लेकर है। पूंजी पतियों का जीवन विलास से अपूर्ण है। जबकि उनके लिए प्राणपण से परिश्रम करने वाले श्रमिक को पेट भर कर भोजन भी नहीं मिलता। यह समस्या कामायनी में कवि ने कई स्थानों पर चित्रित किया है। आधुनिक युग की जाति वर्ग गत समस्या का चित्रण भी कवि की खुशाल लेखनी द्वारा हुआ है।

प्रसाद जी ने कामायनी का जिस समय सृजन हुआ, उस समय गांधीजी का व्यक्तित्व, नित्य विचारधाराएं सारे देश में छाई हुई थी। वह युग गांधीवादी युग था; पूर्णरूप से गांधीजी के विचारों के प्रसार का युग था। उस युग में प्रसादजी भी गांधीवादी विचारधारा से अछूता न रहा और उसकी रचना में यत्र-/तत्र इन विचारों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है गांधीवाद में अहिंसा का स्थान महत्वपूर्ण है। कामायनी की नायिका श्रद्धा और अहिंसा के सिद्धांत की समर्थक है। आत्मरक्षा के लिए तो हिंसा का समर्थन किया जा सकता है। किंतु निरीह जिवो का का वध करने वाली हिंसा का विरोध है —-

" अपनी रक्षा करने में जो
चल जाए तुम्हारा कहीं अस्त्र
वह तो कुछ समझ सकती हूं मैं
हिंसक से रक्षा करें शस्त्र।
पर जो निरीह है जी कर भी कुछ
उपकारी होने में समर्थ,
वे क्यों न जिए, उपयोगी बन
इसका मैं समझ सकीना अर्थ।"

राष्ट्रपिता गांधी जी ने कुटीर उद्योग - धंधों को अपनाने पर जोर दिया था। विदेशी वस्तुओं को अपनाने का उन्होंने प्रसार किया था। तकली कातती हुई श्रद्धा के निम्न चित्रों में गांधीजी की तकली और चरके का स्वर सुनाई पड़ता है -

"मैं बेटी जाती हूं तकली से
प्रतिवर्तन में स्वर विभोर,
चल री तकली धीरे-धीरे

प्रिय गए खेलने को अहेर।"

प्रसादजी पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। और ऐसा स्वाभाविक भी था क्योंकि उस समय गांधी जी का व्यक्तित्व संपूर्ण देश को अच्छादित किए हुआ था। भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय दोनों ने चाहा है। अहिंसा के पोषक दोनों है, धार्मिक रूढ़ियों के विरोधी दोनों है।

निष्कर्ष

कामायनी में प्रसाद जी ने युग और युग की विषम समस्याओं का सफल चित्रण किया है। डॉ रामलाल सिंह ने लिखा है,--- " प्रसादजी ने व्यक्ति, देश तथा जाति के साथ-साथ प्रजाति विश्व की प्रमुख समस्याओं के और भी दृष्टिपात किया और उनका स्वरूप तथा समाधान दोनों कामायनी में चित्रित किया।"इस तरह जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी में आधुनिक भारत में आने वाले सभी समस्याओं का चित्रण किया है और उसका समाधान करने की कोशिश किया है।

सहायक ग्रंथ सूची

१. कामायनी अनुशीलन –डॉ रामलाल सिंह।
२. हिंदी के आधुनिक महाकाव्य –डॉ.गोविंदराम शर्मा।
३. कामायनी –-- जयशंकर प्रसाद।
४. हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में आदर्श भाव

डॉ भारती एच दोडमनी
हिंदी विभागाध्यक्ष
शिवाजी कला,वाणिज्य एवं बी.सी.ए. महाविद्यालय बाड. कारवार

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का इतिहास बहुत विस्तृत है। 19वीं सदी में भारतेन्दु हरिशचंद्र से गद्य का आरंभ हुआ है। गद्य की विधाओं में कहानी विधा प्रसिद्द और सफल विधा है। कहा जाता है कि कहानी नका आरंभ वैदिक युग में ही हुआ है। उपनिषद ग्रंथों में भी कहानी का उल्लेख मिलता है। " निशचय ही ये कहानियाँ पहले ही दृष्टांत से अधिक विकसित है। प्रारंभ विकास और निष्कर्ष में हमें आधुनिकतम कहानियों की याद दिलाती है।"१

कहानी का विकास प्रेमचंद से ही हुआ है। प्रेमचंद जी 300 से अधिक कहानी लिख चुके है। प्रेमचंद के समकालीन लेखक जयशंकर प्रसाद हैं। जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि और आधार स्तंभ माने जाते हैं। न केवल कवि अपितु कहानीकार, नाटककार, उपन्यासकार, निबंधकार आदि विधाओं में अपना कलम चला चुके हैं।

प्रसादजी का संक्षिप्त परिचय

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सन १८८९ में हुआ। बाल्यावस्था में ही माता –पिता की मृत्यु हो गई। प्रसाद जी कठिन परिश्रम से घर पर ही अंग्रेजी, उर्दू ,हिंदी ,संस्कृत , बंगाली और फारसी आदि भाषाओं में पारंगत हो गए।प्रसाद जी की पहली कहानी ग्राम है जो (१९११) में लिखा है।और प्रथम कहानी संग्रह छाया (१९१२) में प्रकाशित है।अन्य संग्रहों में प्रतिध्वनि [१९२६], आकाशदीप [१९२८], आंधी [१९३१], इंद्रजाल [१९३६] आदि है।

प्रसाद जी की रचनाओं में कंकाल, तितली,इतावती उपन्यास हैं। कामायनी,प्रेमपथिक, करुणालय, महाराणा का महत्व, कानन कुसुम, आँसू,झरना,लहर आदि काव्य हैं। अजातशत्रु,चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, एक घूँट, विशाखा आदि नाटक हैं। काव्य और कला तथा अन्य निबंध हैं। प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति, इतिहास, दर्शन, पुरातत्व आदि विशेषताओं को अपनी कहानियों में व्यक्त किया है।

प्रसाद जी की रचनाओं में यथार्थ की अपेक्षा,त्याग और बलिदान,करुणा,प्रेम आदि आदर्श भाव को ही व्यक्त किया है। वे मस्तिष्क से नहीं हृदय से लिखते है। "पुरस्कार" नामक कहानी में देशप्रेम, देशभक्ति और बलिदान का चित्रण व्यक्त किया है। मधुलिका देश के प्रति अपने प्रेम का त्याग करती है पुरस्कार कहानी की नायिका का नाम "मधुलिका" है। कोशल का राजा प्रति वर्ष कृषक बनता है। प्रतिवर्ष किसी एक प्रजा की खेत में इंद्र –पूजन करने के बाद वह जमीन रजा का हो जाता है। मधुलिका के खेत में पूजा के पशचात उसको पुरस्कार देना चाहता है। लेकिन मधुलिका उसका तिरस्कार करती है। उत्सव देखने के लिए मगध का राजा अरुण भी आता है। वहाँ मधुलिका को देखकर उससे प्रेम करने लगता है। मधुलिखा भी उसका प्रेम स्वीकार करती है। लेकिन जब उसको पता चलता है कि वह मगध का राजकुमार अरुण कोशल राज्य पर आक्रमण कर राज को बंदी बनाने के लिए आया है। और उसके सैनिक कोशल के चारों ओर फैल चुके है। तब मधुलिका इस विषय को महाराजा के सामने प्रस्तुत करती है। तब सेनापति अरुण को बंदी बनाते हैं। राजा बहुत खुश हो कर कहता है कि " सिंहद्विप की कन्या तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है।"२ राजा

मधुलिका को पूरी खेत देना चाहता है किन्तु मधुलिका कुछ नहीं चाहती। और वह कहती है कि देना ही है तो मुझे भी प्राणदंड दीजिए कहकर अरुण के पास जाकर खड़ी हो जाती है। यहाँ मधुलिका अपने व्यक्तिगत प्रेम और देश प्रेम दोनों को महत्व देती है। जिससे वह प्रेम करती है देशप्रेम के कारण उसी के विरुद्ध में खडी हो जाती है ये जानते हुए भी कि उसी के कारण राजकुमार अरुण को मृतुदंड मिलता है। मगध राजा के आक्रमण की खबर कोशल राजा को देती है तो राजा खुश होकर मधुलिका को पुरस्कार देना चाहता है। लेकिन मधुलिका पुरस्कार के रूप में मृतुदंड देने के लिए कहकर अरुण के पास खाड़ी हो जाती है।

"आकाशदीप" कहानी की नायिका "चंपा" है। यह प्रेम और बलिदान की कहानी है।इस कहानी में चंपा चंपा नगरी की एक क्षत्रिय बालिका है। चंपा के पिता वर्णिक मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते हैं। माता के देहांत के बाद चंपा पिता के साथ नाव में ही रहने लगती है। आठ साल तक नाव में रहने से समुद्र ही उसका घर हो गया था। एक दिन बुद्धगुप्त नामक जलदस्यु अपने साथियों के साथ मणिभद्र के नाव पर आक्रमण करता है। उस आक्रमण में चंपा के पिता की मौत हो जाती है। अकेली चंपा पर मणिभद्र की बुरी नजर पडती है। और वह चंपा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। किन्तु चंपा मणिभद्र के प्रस्ताव को तिरस्कार करती है। तब मणिभद्र चंपा को नाव में ही बंदी बनाकर रखता है।

जलदस्यु बुद्धगुप्त को भी नाव में बंदी बनाते हैं। नाव में चंपा और बुद्धगुप्त का परिचय होता है। दोनों एक दुसरे की सहायता से बंधन से मुक्त हो जाते हैं। बुद्धगुप्त चम्पा से प्रेम करने लगता है। चंपा के मन में भी बुद्धगुप्त के प्रति प्रेम है, फिर भी उसका तिरस्कार करती है। बुद्धगुप्त को वह अपने पिता के हत्यारे समझती है। किन्तु बुद्धगुप्त चंपा से बहुत प्रेम करता है और यह भी समझता है कि तुम्हारे पिता की हत्या मेरे साथियों ने किया है मैंने नहीं। लेकिन चंपा उसके साथ रहने पर भी उसके सामने अपने प्रेम को प्रस्तुत नहीं करती। और उस पर विश्वास नहीं करती। उसको अपने प्रेम से अधिक अपना कर्तव्य का पालन करना जरुरी लगता है। चंपा बुद्धगुप्त के प्यार को स्वीकार भी नहीं करती है और पिता के हत्यारे समझकर बुद्धगुप्त को मारना भी नहीं चाहती है। द्वंद्व में चम्पा फस जाती है। बुद्धगुप्त से कहती है कि-"विश्वास ! कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ? मैं तुमसे घृणा करती हूँ , फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है , जलदस्यु , तुम्हे प्यार करती हूँ।"३ चंपा बुद्धगुप्त से प्रेम भी करती है ,पिता के हत्यारे कहकर बदला भी लेना चाहती है। अपने कर्तव्य के लिए अपने प्रेम का त्याग करती है।

इस कहानी में वैयक्तिक प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य पर के प्रेम को महत्व दिया है। जयशंकर प्रसाद अपनी सभी रचनाओं में काव्य हो या गद्य रचना जिसमें हमेशा स्त्री को गौरव स्थान दिया है, हमेशा देवी की तरह माना है। उनकी सभी रचनाओं में प्रेम और स्नेह के भाव को देख सकती हैं। बिसाती नामक कहानी में शिरी की प्रेम कहानी है। प्रसादजी की रचनाएँ प्रेम से भरी हुई होती है किन्तु वह प्रेम वासनारहित उत्कृष्ट प्रेम है। "बिसाती" नामक कहानी में कहानी की नायिका "शिरी" धनवान सरदार की बेटी है, किन्तु वह एक गरीब निर्धन युवक से प्रेम करती है। लेकिन युवक मेहनती होने पर भी अमीर सरदार की बराबरी नहीं कर सकता। इसका परिणाम शिरी का विवाह अमीर सरदार से होता है। शिरी अपने प्रेम को मन में ही छिपा लेती है। कुछ समय के बाद शिरी को देखने उसका प्रेमी आता है किन्तु शिरी से मिल नहीं पाता। जब वह लड़का हिंदुस्तान आता है तो शिरी के घर जा कर गठरों में जो कपडे कश्मीरी हिन्दुस्तानी आदि चीजें दिखता है किन्तु शिरी के पिता उदार देने के लिए कहता है। वह एक डाकू था। युवक उधार नहीं दिया तो गठरी उठा ले जा कहता है। अब वह उन सब चीजों को लेकर आया है। पर शिरी का पति जो एक सरदार है कितने पैसे पूछता है तब वह युवक ये चीजें बेचने के लिए नही उपहार देने के लिए कहता है तब सरदार मना करता है । सभी चीजें लेकर जा यहाँ से यैसे कहता है। तब वह युवक ठीक है जाता हूँ लेकिन थोडा हाथ पैर धोता हूँ कहकर सभी कपडे शिरी के घर में रखकर चला जाता है और वापस नहीं आता। इस तरह अपनी प्रेयसी शिरी को उपहार देकर जाता है। प्रसाद जी इस कहानी के माध्यम से पवित्र प्रेम को व्यक्त

किया है। युवक के प्रेम को प्रसादजी मार्मिक रूप से चित्रित किया है।युवक –"मैं उपहार देता हूँ। बेचता नहीं। ये विलायती और कश्मीरी सामान चुनकर लिए हैं। इनमें मूल्य ही नहीं हृदय भी लगा है ये दाम पर नहीं बिकते।" ४ यहाँ प्रसाद जी वासना रहित प्रेम को उजागर किया है।

निष्कर्ष

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवि हैं।इनकी कविताओं में देश –प्रेम, देश-भक्ति , संस्कृति, संस्कार त्याग और बलिदान आदि अनेक आदर्शों को अपनी कविता में व्यक्त किया है। प्रसाद जी भावनात्मक रचना के सृजन करते हैं। इनकी कविताएँ प्रेम में लिखी हुई कविताएँ है लेकिन वासना रहित प्रेम को व्यक्त करते हैं।यही भाव उनकी कहानियों में भी दृष्टिगोचर है। प्रसादजी की कहानियाँ आदर्श की कहानियाँ हैं। कविता की तरह कहानियाँ भी लयात्मक शैली में लिखा है। प्रसाद की रचनाओं में भारतीय इतिहास, सभ्यता, संस्कृति आदि का सुंदर चित्रण दीख पड़ता है। प्रसादजी अपनी कहानियों में सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाकर स्नेहमयी और आदर्श समाज की स्थापना की है। प्रसाद जी अपनी रचनाओं में स्त्रियों को हमेशा गौरव एवं मान सम्मान दिया है।स्त्री को देवी माना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजेंद्र यादव –कहानी स्वरूप और संवेदना –प्रु सं-9
2. गद्यधारा-सं डॉ सुरेश कुमार जैन –प्रु –सं -42
3. कथा सेतु –सं –डॉ उमाशंकर तिवारी श्रीमती माधुरी –प्रु –सं -34
4. प्रतिनिधि कहानियाँ – सं –डॉ मालती आडवानी-प्रु –सं -55

छायावादी काव्य के संस्थापक प्रसाद

डॉ. जफ़रुल्लाखान के के,
अध्यापक, हिंदी विभाग,
जी.एफ़.जी. कालेज, सवणूर-581118.
जिला- हावेरी, कर्नाटक.

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य-परिवार में हुआ था। 'सुँधनी साहू' के नाम से उनकी पारिवारिक दूकान आज भी काशी में है। औपचारिक शिक्षा बहुत नहीं हुई। घर पर ही उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। भारतीय दर्शन, धर्म और इतिहास का गहन अध्ययन उन्होंने किया था। पिता की मृत्यु के बाद पूरे परिवार के भरण-पोषण का दायित्व निबाहते हुए और खानदानी व्यवसाय को संभालते हुए उन्होंने अध्ययन और लेखन का सिलसिला जारी रखा।

प्रारंभिक काव्य-रचना उन्होंने 'कलाधर' नाम से ब्रजभाषा में की। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' है जो उन्हीं के द्वारा संपादित पत्रिका 'इंदु' में छपी थी। प्रसादजी ने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आलोचनात्मक निबंध विधाओं में विपुल साहित्य रचा है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में मादकता और आनंद-वृत्ति के दर्शन होते हैं तो आगे चल कर लोक मंगल की भावना, देश-प्रेम तथा दार्शनिक गहराइयों में वह पैठते चले जाते हैं। अपने समय के राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीयता का विवेचन वह अपनी रचनाओं में ऐतिहासिक और दार्शनिक फलकों पर करते हैं। शैव, बौद्ध, शाक्त दर्शनों से अनुप्राणित होकर वह समरसता का दर्शन निर्मित करते हैं, जो साथ ही साथ आधुनिक पूँजीवादी समाज का वैकल्पिक विवेचन-विमर्श भी है। छायावाद के वह प्रतिनिधि कवि हैं और उनकी 'कामायनी' आधुनिक हिन्दी कविता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति। ऐतिहासिक कथानकों को लेकर तत्कालीन राष्ट्रीय भावना को प्रतिबिंबित करने वाले कई महत्वपूर्ण नाटक भी उन्होंने लिखे हैं। प्रसाद जी की प्रसिद्ध रचनाएं हैं: 'चित्राधार', 'कानन-कुसुम', 'प्रेम-पथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'झरना', 'आँसू', लहर' और 'कामायनी'(काव्यग्रंथ); 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी परिणय', 'राज्यश्री', 'एक घूँट', 'कामना', 'ध्रुवस्वामिनी', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु' और 'स्कंदगुप्त'(नाटक); 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती'(उपन्यास); 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', और 'इंद्रजाल'(कहानी-संग्रह) तथा 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'।

जयशंकर प्रसाद जी 'का देहान्त 15 नवम्बर, सन् 1937 ई. में हो गया। प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। और 'आँसू' ने उनके हृदय की उस पीड़ा को शब्द दिए जो उनके जीवन में अचानक मेहमान बनकर आई और हिन्दी भाषा को समृद्ध कर गई।

छायावाद

कुछ आलोचक रहस्यवाद और छायावाद को एक मानते हैं। कुछ प्रकृति में मानवीय अथवा ईश्वरीय भावों के आरोप को छायावाद कहते हैं। कुछ लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलने वाली शैली को छायावाद कहते हैं। कुछ इसे पाश्चात्य रोमाण्टिसिज्म अर्थात् स्वच्छन्दतावाद का भारतीयकरण मानते हैं। परन्तु उपर्युक्त सभी दृष्टिकोण एकांगी हैं, क्योंकि छायावादी काव्य में उपयुक्त सभी विशेषताएँ थोड़े-बहुत रूप में मिल जाती हैं। अतः संक्षेप में, छायावाद को एक ऐसी काव्य-धारा माना जा सकता है, जिसके भावपक्ष में व्यक्तिवाद, अतृप्त प्रेम, निराशा और वेदना, विद्रोह का सूक्ष्म रूप, प्रकृति का मानवीकरण, उसके साथ तादात्म्य,

सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति, जिज्ञासात्मक रहस्य-भावना आदि बातें मिलती हैं और भावपक्ष की इस नवीनता के कारण जिसके कलापक्ष में नवीन छन्द-विधान, नवीन अलंकार-विधान, लाक्षणिक शब्दावली और प्रतीकों का प्रयोग होता दिखाई देता है। जयशंकर प्रसाद जी की आँसू में इसकी झलक मिलतीहै-

" बाड़वज्वाला सोती थी
इस प्रणयसिंधु के तल में
प्यासी मछली सी आँखें
थी विकल रूप के जल में।"[1]

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी बने। काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानन्दन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है। जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इस बीच पश्चिम के रोमांटिक कवियों का भी प्रभाव हिन्दी कविता पर पड़ा। एक आधुनिक प्रकार का रहस्यवाद' भी इन कविताओं में उतरा। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी मानते हैं कि 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी काफी प्रभाव पड़ा। इस संसार के उस पार जो जीवन है उसका रहस्य जान लेने की जिज्ञासा इन कवियों में बहुत तीव्र है। 'छायावाद' की आधारभूत विशेषताएँ हैं- मानवीय चेतना, उच्चतम सौन्दर्यबोध, मानव-स्वातन्त्र्य तथा सार्वदेशिक संवेदन-क्षमता | कल्पना का इस कविता में विशेष योगदान है। जयशंकर प्रसाद प्रसाद जी को छायावादी काव्य का प्रवर्तक माना जाता है। भारतीय संस्कृति तथा परम्परा के प्रति प्रसाद जी बहुत निष्ठावान थे। उनकी काव्य चेतना सार्वभौमिक थी। उनकी कविता में कल्पना, संवेदना तथा चिन्तन का समन्वय था। उनकी कविता अत्यन्त प्रौढ तथा आकर्षक है। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'झरना', 'आँसु', 'लहर', तथा 'कामायनी' है। सबसे पहले 'झरना' में 'छायावाद' का स्वर सुनाई पड़ता है, जो 'लहर' और 'कामायनी' में निरन्तर विकसित होता है। 'कामायनी' आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये-
तू अब तक सोई है आली।
आँखों में भरे विहाग री ![2]

'हिमाद्रि तुंग शृंग से' जयशंकर प्रसाद जी द्वारा लिखी गई है। इस कविता में देश की स्वतंत्रता की रक्षा हेतु भारत माता पिता के वीर सपूतों का आह्वान किया है। प्रसाद जी स्वतंत्रता संघर्ष के बीच सिपाही के रूप में देश प्रेम की उत्कट तीव्र भावना से ओतप्रोत होकर भारत मां के वीर सपूतों का आह्वान करते हुए लिखते हैं कि भारत माता के वीर सपूतो आज पराधीनता की बेड़ियां में जकड़ी हुई भारत मां की स्वतंत्रता हिमालय की ऊंची ऊंची चोटियों

की दिव्य ज्ञान वाणी से तुम्हें अपनी रक्षा के लिए पुकार रही है। तुम तो भारत मां के अमर वीर पुत्र हो और दृढ़ प्रतिज्ञा वाले साहसी वीर सपूत हो। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से' में भी देशप्रेम और स्वतंत्रता-संघर्ष के लिये आह्वान प्रेरणा दी गई है-

" हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती-
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ज सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढे चलो, बढ़े चलो।"[3]

राष्ट्रप्रेम के लिए सर्वस्व त्याग बलिदान और समर्पण का भाव तथा मातृभूमि के प्रति सच्ची श्रद्धा व निष्ठा ही इस रचना का मूल प्रेरणा उद्देश है।

पुनर्जागरण अथवा नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता या सीमा उसका अतिरिक्त रूप से पुनरुत्थानवादी होना हैगुप्तजी की तुलना में अधिक सघनता एवं सामर्थ्य के साथ प्रसाद इस पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को स्वर देते हैं। अतीत और खास करके हिन्दू भारत का गौरव गान उनका अत्यंत प्रिय पक्ष है, जिसकी भित्ति पर ही उनकी नवोन्मेषशालिनीराष्ट्रीयता की भावना टिकी हुई है। राष्ट्र-प्रेम और स्वतंत्रता-संघर्ष के लिए आह्वान की प्रेरणा वहीं से शक्ति ग्रहण करती है। प्रसाद अपने नाटकों में विशेष रूप से अखण्ड (हिन्दू) भारत की परिकल्पना पेश करते हैं और संघर्ष तथा बलिदान की मिसालें खड़ी करने वाले संदर्भों एवं पात्रों की रचना करते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से' ऐसे ही संदर्भ की एक ललकार भरी कविता है।

निष्कर्ष:- छायावादी-काव्य अपने भावपक्ष के चित्रण में एकांगी, संकीर्ण और व्यक्तिपरक रहा। इस दृष्टि से आज के मानवतावादी युग में उसका विशेष मूल नहीं माना जा सकता, परंतु हिंदी भाषा की समृद्धि, सोंदर्य और शक्ति को उन्नत एवं समृद्ध बनाने में इस काव्य के कलापक्ष ने युग-प्रवर्त्तक का कार्य किया था। जन-जीवन की उपेक्षा करने के कारण ही छायावादी काव्य मात्र पन्द्रह-बीस वर्ष जीवित रहकर ही समप्त हो गया।

संदर्भ

1. हिंदी काव्य-संग्रह, सं. शशिशेखर तिवारी- पृ.सं.- 113.
2. वही, पृ.सं.- 115
3. काव्य-वैभव, सं. दूधनाथ सिंह - पृ.सं.- 16.

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी

डॉ. नाज़िरुन्निसा एस
सहायक प्रोफेसर, अध्यक्ष हिंदी विभाग
एस जे एम् कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स
चित्रदुर्गा

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी के विभिन्न रूप हमें देखने को मिलता है। 'तितली' उपन्यास में प्रसाद का स्त्रीवादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है। इस उपन्यास में मूर्तिमान नारीत्व, आदर्श भारतीय पत्नीत्व जागृत हुआ है। तितली प्रसाद की वह नारी पात्र है जिसमें स्वाभिमान का भाव है। उसके पति मधुबन को सजा हो जाने पर एवं उसके पूर्वजों का शेरकोट बेदखल हो जाने पर तथा बनजरिया पर लगान लग जाने पर, इतनी दुरवस्था में भी वह किसी से सहायता की भीख नहीं माँगती, बल्कि वह खुद मेहनत करके लड़कियों की पाठशाला चलाती है और अपने पुत्र को पालती है। अपनी दुरवस्था में अपने ही अवलम्ब पर वह स्वाभिमानपूर्वक जीना चाहती है। अपने अस्तित्व को वह बनाएँ रखने में समर्थ होती है। वह शैलो से कहती है……..'' **मुझे दूसरों के महत्व-प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता न दिखानी चाहिए। मैं भाग्य के विधान से पीसी जा रही हूँ। फिर उसमें तुमको, तुम्हारे सुख से घसीट कर, क्यों अपने दुख का दृश्य देखने के लिए बाध्य करू?मुझे अपनी शक्तियों पर अवलम्ब करके भयानक संसार से लड़ना अच्छा लगा। जितनी सुविधा उसने दी है, उसी की सीमा में मै लड़ूँगी, अपने अस्तित्व के लिए।** '' [1] अपनी विषम परिस्थितियों में उसका स्वाभिमान और क्षोभ और भी शक्तिशाली हो जाता है ' मुझे पहले ही जब लोगो ने यह समाचार नहीं मिलने दिया कि उनका मुकद्दमा चल रहा है, तो अब मैं दूसरों के उपकार का बोझ क्यों लूँ? ' अंततः वह अपने पुरूषोचित्त साहस से चौदह बरसों तक बिना किसी के सामने झुके अपने बल पर अपनी सारी गृहस्थी बनाने में सफल होती है। उसके गरिमामयी व्यक्तित्व को देखकर दन्द्रदेव भी सोचता है……'' **मैं तो समझता हूँ कि उसके जन्म लेने का उद्देश्य सफल हो गया है। तितली वास्तव में महीयसी है, गरिमामयी है।** '' [2] इस प्रकार तितली प्रसाद की वह नारी पात्र है जिसमें आत्मबल प्रबल है, जो अपने पति से विरहित होकर भी विचलित नहीं होती बल्कि विषम परिस्थितियों को झेलती हुई समाज में सगर्व मस्तक उठाये अपने लिए सम्मानित स्थान बनाती है जो तत्कालीन समाज में अत्यंत कठिन था परन्तु प्रसाद ने इसे कर दिखाया।

उपन्यास 'इरावती' की नारी पात्र इरावती एक अज्ञातकुल शीला बालिका है जिससे महादंड-नायक पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र प्रेम करता है। परंतु गुरूजनों के विरोध के कारण अग्निमित्र उसे छोड़कर चला जाता है तब से इरावती, महाकाल मंदिर की देवदासी का जीवन व्यतीत करती है। कई बार वह कामुक वृहस्पति मित्र की कुदृष्टि का शिकार बनती है। वह अपने जीवनव्यापी कष्टों को अपने हृदय पर दबाकर रखना चाहती है, उसे किसी के सम्मुख प्रकट नहीं करना चाहती है और न ही किसी की सहानुभूति का पात्र बनना चाहती है तथा अग्निमित्र से कहे इन शब्दों में उसका स्वाभिमान व्यक्त होता है……'' **स्त्री के लिए, जब देखा कि स्वावलम्बन का उपाय कला के अतिरिक्त दूसरा नहीं, तब उसी का आश्रय लेकर जी रही हूँ। मुझे अपने में जीने दो** '' [3]

इरावती का जीवन एक विडम्बनापूर्ण है। पूरे उपन्यास में वह विभिन्न षडयंत्र एवं कुचक्र का सामना करते हुए दिखाई देती है। प्रसाद की कहानियों का स्त्री पात्र विभिन्न सामाजिक दायरों से ग्रस्त है परंतु फिर भी वह

स्वाभिमानी, त्यागशीला, संघर्षशीला,स्वावलम्बी एवं प्रेम और कर्तव्य का निर्वाह करने वाली है। 'पुरस्कार' कहानी की मधुलिका में स्वाभिमान का भाव प्रबल है। मधूलिका अपने पितृपितामहों की भूमि को बेचना नहीं चाहती, इसलिए वह राजा का दिया हुआ मूल्य स्वीकार नहीं करती । महाराज मधूलिका को कुछ स्वर्णमुद्राएँ खेत के लिए पुरस्कार स्वरूप देता है परंतु मधूलिका उस पुरस्कार को वापस महाराज पर न्यौछावर कर देती है। वह मधूलिका में स्वीभिमान का भाव इतना प्रबल है कि उस खेत के अतिरिक्त कोई जीविका का साधन न होने पर भी उसका मूल्य नही लेती और यह जानते हुए भी कि राजकोप हो सकता है, वह मंत्री की तीखी बात पर निर्भयता से उत्तर देती है।

'ममता' कहानी में ममता एक ब्राह्मण-विधवा है उसका वृद्ध पिता पुत्री के स्नेह में विह्वल है। पिता स्वर्ण में उसके मन को उलझाकर उसकी वेदना को धीरे-धीरे विस्मृत करना चाहता है, इसलिए वह शेरशाह से उत्कोच स्वीकार कर लेता है, किन्तु स्वाभिमानिनी ममता को वह 'अर्थ' नही 'अनर्थ' प्रतीत होता है। वह उस धन को भविष्य के लिए एवं विपत्ति के लिए भी नहीं संचय करना चाहती। वह कहती है ....'' **क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भूपृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सकें** '' [4] यह उसके त्याग एवं सात्विकता का परिचय है। 'सालवती' कहानी की सालवती अत्यंत दरिद्र है परंतु दरिद्रता उसके स्वामिमान को मिटा नहीं सकती। जब वैशाली का उपराजा अभयकुमार उसे उपहार स्वरूप अपने कंठ की मुक्ता की एकावली देता है, तो वह उसके दान को ग्रहण करने से अस्वीकार करती है।

प्रसाद की नारी उनकी कहानियों में अपनी स्वावलम्बी रूप का भी परिचय देती है। 'पुरस्कार' कहानी की मधूलिका पिता के मृत्यु पश्चात स्वयं कृषि कार्य करके इसी भाव का परिचय देती है। यही नहीं, जब उसका खेत राजा द्वारा ले लिया जाता तब भी वह उनसे राजकीय दान न लेकर स्वयं दूसरे खेतों में काम करके अपना जीवन निर्वाह करती है। 'आँधी' कहानी की कंजर युवती साथिया मजूरी करके जीने में ही सुख का अनुभव करती है। वह मुचकुंद के फूल इकट्ठे करके बेचती है, सेमर की रूई बीनती है एवं लकड़ी के गट्ठे बटोर कर बेचती है, वह भी बिना किसी सहायक के। प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व प्रसाद ने 'पुरस्कार' कहानी की मधूलिका में तथा 'आकाशदीप कहानी' की चम्पा में दिखाया है। मधूलिका की मानसिक द्वंद्व को प्रेम और पितृपितामहों की भूमि से प्रेम। अंततः प्रबल व्यक्तिगत प्रेम पर की विजय होती है और अंत में मधूलिका अपने प्रेमी के प्रति नारी सुलभ उत्तरदायित्व का भी निर्वाह करती है।

'आकशदीप' की चम्पा भी मानसिक द्वन्द्व को झेलती है। वह कभी जलदस्यु बुद्धगुप्त से प्रेम करती है तो कभी उसे अपने पिता का हत्यारा समझकर घृणा भी करती है। अंततः वह बुद्धगुप्त को स्वदेश लौटने की प्रेरणा देती है और स्वयं द्वीप के भोले-भाले प्राणियों की सेवा करने का संकल्प लेती है। एवं मातृ-पितृ भक्ति के याद में उस दीप-स्तंभ में आलोक जलाती है।

प्रसाद के नाटकों में नारी-पात्र जहाँ एक ओर भावुक, त्यागशीलता, कर्तव्यपरायण, सेवा-परायणा, कोमल, उदार इत्यादि है वहीं दूसरी ओर उनमें आत्मसम्मान का भाव प्रबल है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की सरमा एक स्वाभिमानी स्त्री है। मनसा द्वारा किए गए जातिगत अपमान को वह सह नहीं पाती इसलिए नागकुल के अपमानपूर्ण राजसिहासन को वह ठुकरा देती है। परंतु इतने पर भी वह नागों का अनिष्ट नहीं चाहती, यह उसकी उदारता का ही परिचय है। 'राज्यश्री' नाटक की राज्यश्री भी स्वभाव से क्षमाशीला, उदार एवं कोमल है परंतु उसे अपने कुल की मर्यादा का पूर-पूरा ध्यान है इसलिए वह तलवार लेकर देवगुप्त पर निर्भयता से चलाती है। उसे अपने राज्य का छीन जाना अपमानजनक लगता है। 'विशाख' की इरावती निर्धन सुश्रवा नाग की कन्या है। उसके सामने अनेक बाधाएँ आती है, परंतु वह उसे निर्भीकता एवं दृढ़ता से पार करती है। उसकी दरिद्रता उसके आत्म-सम्मान को नष्ट नहीं करती है। राजा नरदेव द्वारा दिये गये महारानी बनने का प्रलोभन भी उसे मार्ग से

विचलित नहीं करता बल्कि वह राजा का मुँह तोड़ जवाब देती है कि झोपड़ी में ही राजमंदिर से अधिक सुख है। नरदेव की रानी भी चंद्रलेखा पर हो रहे अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाती है और राजा को भयंकर परिणाम की चेतावनी भी देती है। 'अजातशत्रु' में एक ओर जहाँ कोमल नारी स्वभाव का चित्रण हुआ है। रानी शक्तिमति ऐसी ही नारी पात्र है। उसमें स्वाभिमान की गहरी छाप है। राजा प्रसेनजित द्वारा उसको पद्च्युत करना तथा उसके पुत्र को पद से अपदस्थ करना उसके सम्मान को ठेस पहुँचाता है। अपनी इन उपेक्षाओं से व्यथित होकर वह पुरूषों के समान स्त्रियों के अधिकार की माँग करती है। दूसरी ओर अजातशत्रु की मल्लिका में प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व लक्षित होती है जो पति के कर्तव्य कर्म के प्रति जागरूक है। उसके संस्पर्श में आने वाल समस्त आसुरी वृत्ति वाले चरित्र मानवीवृत्ति में परिवर्तित हो जाता है। विरूद्धक एवं प्रसेनजीत जैसे पुरूष-पात्र भी मल्लिका के शरण में आकर उसकी करूणा में विश्रांति पाते हैं।'चंद्रगुप्त' नाटक के प्राय: सभी स्त्री पात्रों में देश-भक्ति प्रबल है। अलका देश सेवा से प्रेरित होकर अपने विरोधी भाई एवं पिता का परित्याग करती है। मालविका द्वारा उद्भाण्ड सेतु का मानचित्र बनाना ता चंद्रगुप्त की शय्या पर सोकर आत्मोत्सर्ग करना भी प्रबल राष्ट्रीयता का परिचायक है। प्रसाद की नायिकाएँ कल्याणी, मालविका, कार्नेलिया, सुवासिनी केवल मात्र प्रेमिकाएँ ही नहीं है बल्कि उनमें आत्मसम्मान की ज्योति भी है। पर्वतेश्वर द्वारा विवाह संबंध ठुकराएँ जाने पर कल्याणी का स्वाभिमान गरज उठता है। जिसका प्रतिशोध वह युद्ध क्षेत्र में पर्वतेश्रवर की मदद करके, उसे नीचा दिखाकर लेती है। इतना ही नही, वह अपनी मान रक्षा के लिए मद्यप पर्वतेश्वर की हत्या भी करती है। कार्नेलिया के साथ जब फिलिप्स अश्लीलता से पेश आता है तब कार्नेलिया अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए चिल्लाती है और अंत में चंद्रगुप्त उसकी रक्षा करता है। एक ब्राह्मण द्वारा शकटार की पुत्री सुवासिनी को वेश्या इत्यादि कहे जाने पर उसके आत्मसम्मान पर ठेस पहुँचता है इसलिए वह अपने प्रेमी राक्षस को उससे बदला लेने के लिए उद्यत करती है। एक ओर जहाँ 'चंद्रगुप्त' की नारी पात्रों में स्त्री सुलभ आचरण है वहीं उनमें प्रतिकार की भावना प्रबल है। नाटक 'स्कन्दगुप्त' में एक ओर जहाँ अनंतदेवी एवं विजया जैसे कुटिल स्त्री-पात्र है, वहीं दूसरी ओर सर्वगुण सम्पन्न स्त्री-पात्र भी है। देवसेना, कमला, जयमाला, रामा एवं देवकी आदि का चरित्र, करूणा, माया, क्षमा, त्याग, सेवा, साहस आदि गुणों से ओत-प्रोत है। देवसेना राष्ट्र कल्याण के लिए विभिन्न विषम परिस्थितियों में स्वयं उपस्थित होती है, जयमाला भी दुर्ग की रक्षा का भार अपने हाथ लेती है। इतना ही नहीं वह अपने पति बंधुवर्मा को शत्रुओं से लड़ने के लिए प्रेरित करती है। देवसेना तो अपने व्यक्तिगत प्रेम को देश की वेदी पर उत्सर्ग कर देती है। देवकी अपने हत्यारों को क्षमा कर देती है, उसकी क्षमामयी मूर्ति के सामने अनंतदेवी का हृदय भी परिवर्तन हो जाता है। कमला अपने पुत्र को तथा रामा अपने पति शर्वनाग को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती है। इस तरह स्कंदगुप्त के स्त्री-पात्र विश्व-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की मुख्य समस्या ही पुनर्विवाह के लिए स्त्री अधिकार है। इसमें दो प्रकार की नारी पात्रों का चित्रण प्रसाद ने किया है। एक कोमा.जो पति के व्यवहार से क्षुब्ध तो है परंतु उसे हृदय से त्यागने पर असमर्थ है। दूसरी विद्रोहिणी नारी ध्रुवस्वामिनी, जो क्लीव पति के अत्याचार से क्षुब्ध होकर विद्रोह करती है और अंत में चंद्रगुप्त से परिणय कर पुरूषों के अत्याचार को चुनौती देकर नारी-स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रसाद ने स्त्रियों का आदर्श रूप 'अजातशत्रु' में प्रतिपादित करते हुए कहा है.....'' **कठोरता का उदाहरण है पुरूष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरूष क्रूर है तो स्त्री करूणा है, जो अंतर्गत का उच्चतम विकास है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं।** '' [5]

प्रसाद स्त्रियों से कोमल स्वभाव की ही अपेक्षा रखते हैं साथ ही साथ आत्मसम्मान- रक्षा के लिए उनसे हर संभव विद्रोह की भी कामना करते हैं। यद्यपि प्रसाद का मानना है कि स्त्रियों के विद्रोहिणी रूप के लिए पुरूष समाज की उत्तरदायी है। अन्यथा स्त्रियों में वह प्राकृतिक शक्ति है जिसके द्वारा वह उन समस्त पुरूषों पर अधिकार जमा सकती है जिन्होंने पूरे विश्व पर शौर्य एवं पराक्रम से विजय प्राप्त किया है। प्रसाद के साहित्य में ऐसे स्त्री-पात्र भी है

जिन्होंने करूणा, माया, ममता, सेवा, त्याग, कर्तव्य एवं बलिदान से अपने चरित्र को स्पृहणीय बना दिया है जैसे श्रद्धा, मल्लिका, तितली, देवसेना, देवकी, वासवी इत्यादि जिनकी क्षमामयी मूर्ति के सामने पुरूष भी नतमस्तक होते हैं और उसकी छाया में विश्रान्ति पाते हैं। यद्यपि प्रसाद स्त्रियों से इन्ही कोमल स्वभाव की अपेक्षा रखते हैं जैसे 'अजातशत्रु' में प्रसाद उनकी कोमलता का समर्थन करते हुए कहते हैं " **स्त्रियों के संगठन में, उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही, एक परिवर्तन है- जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं, किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर .... जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया है।**'' [6] परंतु यदि पुरूष उनके कोमल वृत्तियों यथा-त्याग, बलिदान, करूणा इत्यादि से अनुचित लाभ उठाता है तो उनसे हर संभव विद्रोह करने की भी कामना प्रसाद करते हैं। वस्तुतः स्त्रियाँ करूणा, कोमलता, सहिष्णुता आदि कोमल वृत्तियों द्वारा ही समस्त अधिकार की अधिकारिणी हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री-पात्र ओजस्वी, शक्तिशाली, प्रतिभासंपन्न, साहसी, संघर्षशील, नेतृत्वकारिणी, वैयक्तिक जीवन को सामाजिक जीवन के लिए उत्सर्ग करने वाली, राजनीति में सक्रिय होन वाली, रणक्षेत्र में युद्धतत्पर तथा अन्याय एवं अत्याचारों का विद्रोह करने वाली है। वस्तुतः प्रसाद की नारी अपने दृढ़ विद्रोह से पुरूष को चुनौतियाँ देकर पूरे समाज व्यवस्था को बदलने पर मजबूर करती है जो महादेवी, पंत एवं निराला के नारी पात्रों में दुलर्भ है। इन्हीं कारणो के लिए प्रसाद की नारी इनसे अलग खरी उतरती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. तितली, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993, पृ 188
2. तितली, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993, पृ 189
3. इरावती, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993, पृ 16
4. आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती-भंडार, इलाहाबाद, 2007
5. जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ 273
6. जयशंकर प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ 272

ग्रामीण विकास में परंपरागत संचार माध्यम

श्री. लाड़लेमशाक पी. नदाफ
पता: DG 1/1, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय
कलबुरगी, कर्नाटक

शोध सार

भारत में ग्रामीण जनता तक विकास संबंधी संदेश पहुंचाने में परंपरागत संचार माध्यम अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रहे हैं और उन्होंने अतीत में लोगों के दृष्टिकोण को खासा प्रभावित किया है। जहां सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहां आधुनिक संचार माध्यमों का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है, खासतौर पर ज्ञान की वृद्धि के लिए। पर जहां तक ग्रामीण श्रोताओं के नजरिए में बदलाव लाने का सवाल है, हमें परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा क्योंकि ग्रामीण जनों को इन्हीं माध्यमों में अपनी छवि नजर आती है और ये उन्हें अपने से लगते हैं।

"मोटे रूप से संचार के माध्यमों को दो भागों में बाँटा जा सकाता है- 1. परंपरागत माध्यम 2. आधुनिक माध्यम।"[1] जैसाकि नाम से ही विदित है, परंपरागत संचार माध्यम वे माध्यम हैं जिनमें समाज की परंपराएं, संस्कृति और मूल्य समाहित हैं। ग्रामीणों के दिलों के करीब होने के कारण ये लोकसंचार माध्यम भी कहलाते हैं। ये माध्यम अनूठी प्रकृति के होते हैं क्योंकि ये ग्रामीण जनता की रोजमर्रा की जीवनशैली से मेल खाते हैं। इनकी एक और विशेषता है कि कोई व्याकरण या साहित्य न होने के बावजूद मौखिक या क्रियागत स्रोतों के माध्यम से इनका वर्धन होता है। "संचार के लिए किसी न किसी माध्यम का होना आवश्यक है, अर्थात कोई व्यक्ति जिससे अपने विचार संप्रेषित करता है। पारंपरिक, मुद्रित अथवा इलेक्ट्रॉनिक ये तीनों प्रचालित संचार माध्यम हैं जो मानव सभ्यता के क्रमिक विकास को दर्शाते हैं"।[2]

भारतीय समाज के पास अपनी लोक-कलाओं, लोकनृत्यों, लोककथाओं, महाकाव्यों, आल्हाओं और नाटकों का विपुल भंडार है, जिसका इस्तेमाल ग्रामीण जनता को शिक्षित करने के लिए किया जा सकता है (गौड़, पालीवाल, पी.)। हमारे देश की सबसे लोकप्रिय परंपरागत कलाशैलियां हैं- तमाशा और पोवाड़ा (महाराष्ट्र), नौटंकी (उत्तर प्रदेश), यक्षगान (कर्नाटक), तेरूकुत (तमिलनाडु), जात्रा (पश्चिम बंगाल), भवाई (गुजरात), कीर्तन, आल्हा के विविध रूप, लोकसंगीत, पहेलियां, लोककथाएं और कठपुतली का खेल।

सूचना क्रांति और परंपरागत संचार माध्यम

परंपरागत संचार माध्यम एक लंबे समय से आम जनता के लिए लोकप्रिय मनोरंजन का स्रोत रहे हैं तथा उन्होंने मनोरंजन के साथ-साथ निर्देश तथा सूचना देने का काम भी किया है। भारत में ग्रामीण जनता तक विकास संबंधी संदेश पहुंचाने में ये माध्यम अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रहे हैं और उन्होंने अतीत में लोगों के नजरिए को खासा प्रभावित किया है। पर हाल ही में विकास कार्यों में जुटे पदाधिकारियों ने अपना ध्यान तेजी से उभर रहे इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की ओर लगा दिया है उनके लिए संचार के ये नए इलेक्ट्रानिक माध्यम अनोखा आकर्षण हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि इनके द्वारा कम समय और कम लागत में वे देश के चप्पे-चप्पे में अपना संदेश पहुंचा सकते हैं। इन आधुनिक संचार माध्यमों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जैसे तुरंत संचारण, व्यापक

विस्तार विश्वव्यापी पहुंच आदि, जिन्हें रेखाचित्र-1 में दिखाया गया है। ये विशेषताएं विकास कार्यों में जुटे कर्मचारियों, व्यावसायिक उद्यमियों, शिक्षाविदों, राजनीतिज्ञों तथा शहरी जन समुदाय को खासा प्रभावित करती हैं।

आधुनिक संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताओं (रेखाचित्र-1) पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने पर यह बात सामने आती है कि लगभग सभी नए संचार माध्यमों को बिजली, कम्प्यूटर सुविधा, इंटरनेट कनेक्शन, टेलीफोन कनेक्शन जैसी तमाम बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है जबकि हमारे देश में आज भी ऐसे हजारों गांव हैं जहां कम्प्यूटर, इंटरनेट या ई-मेल सेवाएं तो दूर की बात, बिजली या टेलीफोन कनेक्शन तक नहीं है।

हमारे देश में साक्षरता का स्तर भी बहुत नीचे है, जबकि ये भी अधिकतर इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के लिए एक बुनियादी जरूरत है। कोठारी और ताकेड़ा (2000) के अनुसार साक्षरता 'साफ्ट' बुनियादी ढांचे का एक नाजुक पहलू है जो सूचना क्रांति का विस्तार और स्वरूप तय करेगा। सहस्राब्दीढां के इस मोड़ पर अगर भारत का दूरसंचार बुनियादी ढांचा हाई बैंडविड्थ पर समूचा विस्तार भी चाहता है तो भी साक्षरता और भाषा के अवरोधों के चलते विश्वव्यापी इंटरनेट अपने वेब पर मुश्किल से आबादी का कुछ हिस्साभर शामिल कर सकेगा। देश के केवल आधे बालिग साक्षर हैं और इन साक्षरों में से भी आधे इतने पढ़े-लिखे हैं कि पाठ्य-पुस्तकों या इंटरनेट का लाभ उठा सकें।

रेखाचित्र-1 आधुनिक संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताएं

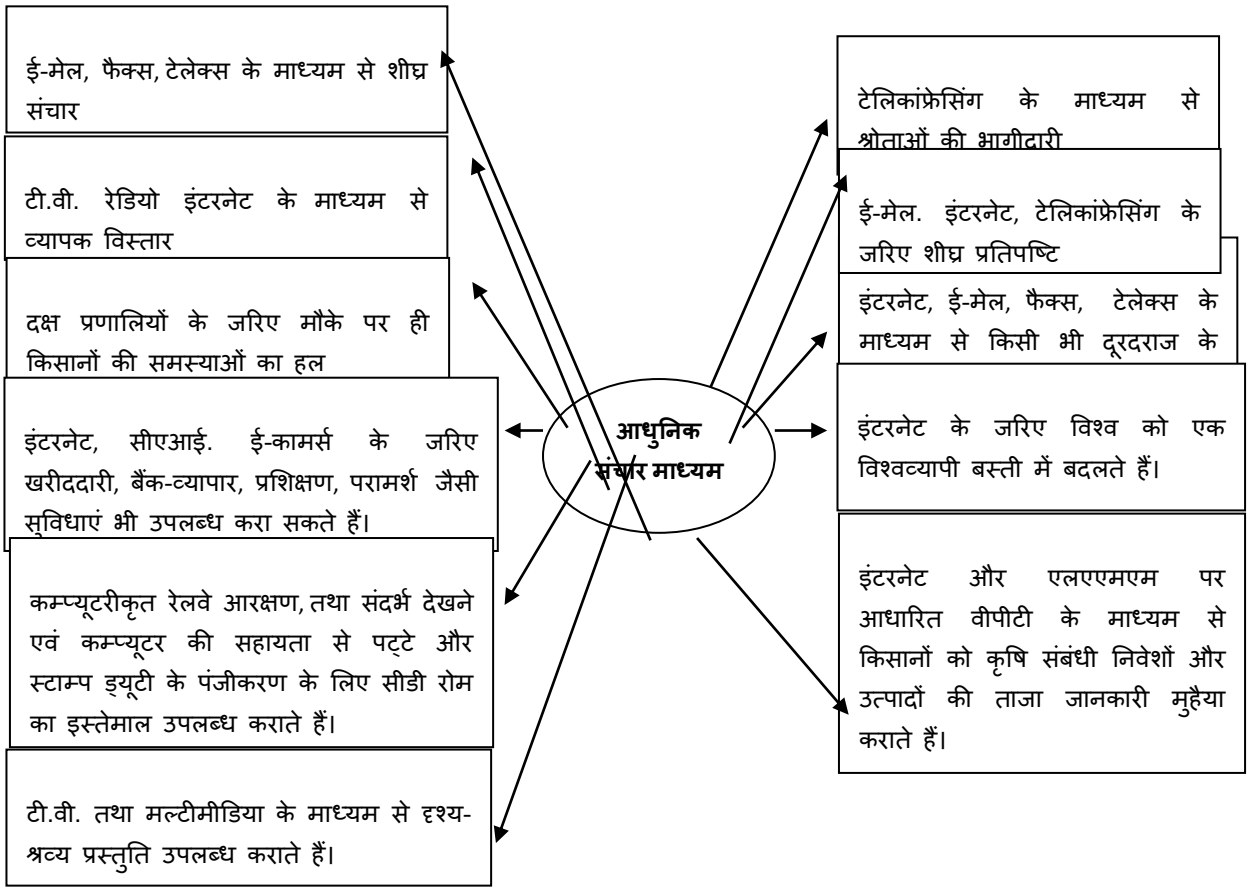

रेखाचित्र 2 - परंपरागत संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताएं

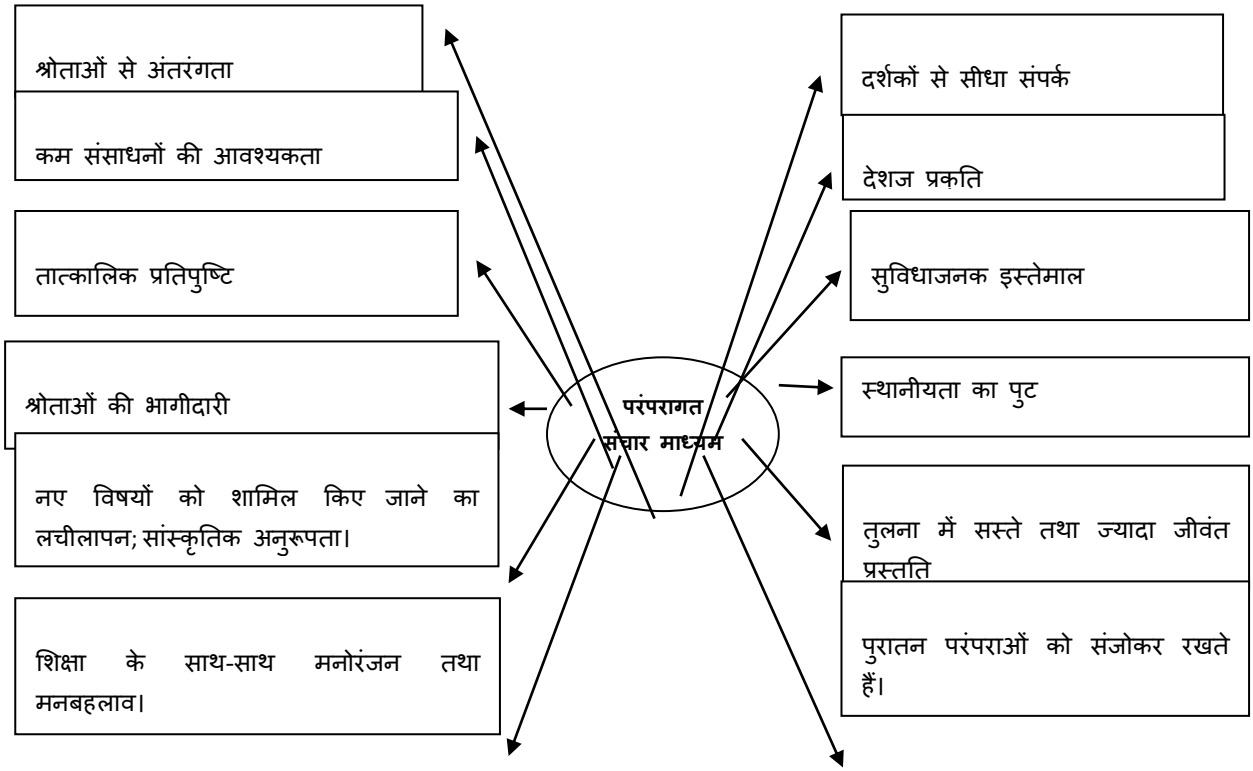

यह कहने का हमारा तात्पर्य आधुनिक संचार माध्यमों की आलोचना करना कतई नहीं है क्योंकि ये माध्यम हमारा भविष्य हैं। उनमें बहुत संभावना है और वे विकास के वर्तमान दृश्य विधान को प्रभावी ढंग से बदल सकते हैं, पर इस मौके पर विकास कार्यों के लिए पूरी तरह इन संचार माध्यमों पर आश्रित हो जाना ठीक नहीं होगा। फिलहाल, आधुनिक संचार माध्यमों का अधिकांश लाभ शहरी आबादी एवं विशिष्ट ग्रामीण वर्ग, प्रगतिशील किसानों तथा उपनगरीय गांवों के उच्च सामाजिक- आर्थिक श्रेणी वाले गांववासियों को मिल रहा है गरीब, शोषित तथा भूमिहीन किसान, जिनके पास कुछ एकड़ भूमि और कुछेक पशु हैं और जो मुख्यरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, अभी भी इन संचार माध्यमों का लाभ नहीं उठा पा रहे।

सही मायने में गांवों में संचार व्यवस्था तथा सूचना का अभाव है क्योंकि नए संचार माध्यम ग्रामीण जनता तक पहुंच नहीं पाए हैं और परंपरागत संचार माध्यमों को लेकर विकास कार्यों में जुटी एजेंसियां उदासीन हैं या फिर उन्होंने उन्हें नकार दिया है।

"जहां सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहां आधुनिक संचार माध्यमों का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है, खासतौर पर ज्ञान की वृद्धि के लिए। पर जहां तक ग्रामीण श्रोताओं के नजरिए में बदलाव लाने का सवाल है, हमें परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा, क्योंकि ग्रामीण जनों को इन्हीं माध्यमों में अपनी छवि नजर आती है और ये उन्हें अपने से लगते हैं। इन संचार माध्यमों में परिवर्तन की क्षमता अधिक है और ये श्रोताओं में स्वाभाविक रुचि पैदा कर देते हैं। स्थानगत आकर्षण, देशज प्रकृति तथा सांस्कृतिक अनुरूपता जैसी (रेखाचित्र -2) कुछ विशेषताओं ने लोकसंचार माध्यमों को ग्रामीण जनता के बीच महत्वपूर्ण, अनूठा और लोकप्रिय बना दिया है"।[3]

विकाय कार्यों में परंपरागत संचार माध्यमों के इस्तेमाल के पिछले अनुभव / अनुसंधान

भारत में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब संचार माध्यम ब्रिटिश नियंत्रण में थे, तब स्वतंत्रता सेनानियों ने अत्याचारियों का उपहास करने के लिए तमाशा, भवाई तथा नौटंकी जैसे लोकसंचार माध्यमों का इस्तेमाल किया था। (रंगनाथ. 1980)

समकालीन जीवन पर टिप्पणी करने के लिए अन्ना भाऊ साठे, पी. एल. देशपांडे, वसंत सबनिस वसंत बापट तथा वी. डी. मगुलकर जैसे नाटककारों ने तमाशा के एक प्रकार ढोलकी बारिस का सहारा लिया। उधर तमाशा की नाट्यशैली लोकनाट्य को अनेक सामाजिक और राजनीतिक मामलों पर जनसाधारण की सोच बदलने के लिए काम में लाया गया। हमारी सरकार ने भी परिवार नियोजन के बारे में जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए अनेक तमाशा मंडलियों को प्रायोजित किया। (कुमार, केवल, जे. 1981)

अलकाजी और हबीब तनवर सरीखे लोक-रंगशालाकर्मियों के प्रयासों ने अपनी लोक-रंगशालाओं के माध्यम से अनेक शैक्षिक संदेशों का सफलतापूर्वक प्रसार किया। उत्पल दत्त ने राजनीति का पाठ पढ़ाने के लिए अपने नाटकों में जात्रा (पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा की लोक नाट्यकला) शामिल की।

मोतीलाल रे तथा मुकुंददास ने भी राष्ट्रीयता की भावना फैलाने के लिए जात्रा का इस्तेमाल किया। केंद्र एवं राज्य सरकारों ने परिवार नियोजन, विकास संबंधी गतिविधियों. लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय एकता के बारे में जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए नेशनलिस्ट हरीकथा (कीर्तन का एक प्रकार) का उपयोग किया। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन ने कीर्तन को विकास संबंधी संदेश प्रसारित करने का माध्यम बनाया। यूनियन बैंक ऑफ इंडिया तथा जीवन बीमा निगम ने बैंकों में बचत करने तथा एल.आई.सी. पॉलिसियों के प्रति ग्रामीण लोगों की रुचि जगाने के लिए भारतीय कठपुतली के तमाशे का प्रभावी ढंग से आल्हाओं किया। दिल्ली के निकटवर्ती दो गांवों में कठपुतली के तमाशे और एक वृत्तचित्र के तुलनात्मक प्रभाव पर भारतीय जनसंचार संस्थान के मार्गदर्शी अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि सस्ता परंपरागत माध्यम होने की वजह से ग्रामीणजन फिल्म के मुकाबले कठपुतली के तमाशे की तरफ ज्यादा संवेदनशील दिखाई दिए। (कुमार केवल जे. 1981)

"ग्रामीण संचार संस्थान ने राजस्थान के उदयपुर में साक्षरता के प्रति माहौल बनाने का एक अभियान सफलतापूर्वक पूरा किया, जो सूचना प्रसार के लिए लोकसंचार माध्यमों के उपयोग पर आधारित था। समूचे अभियान के लिए सौ कलाकारों को लोकसंचार माध्यमों की विभिन्न शैलियों को संचालित तथा प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक संचार विधि तथा कौशल में प्रशिक्षित किया गया। जब पूरा समूह गांव में प्रवेश करता था तो अपने नारों, गानों और नृत्यों द्वारा बहुत आसानी से गांववासियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उन्होंने कठपुतली के तमाशों, नुक्कड़ नाटकों, लोकगीतों और नृत्यों सहित अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए, जिन्हें साक्षरता की विषय-वस्तु के चारों ओर बुना गया था। समूह ने 756 गांवों की पैदल यात्रा की। अभियान के बाद किए गए सर्वेक्षण से यह उजागर हुआ कि वे साक्षरता के पक्ष में ग्रामीण जनता के नजरिए को बदलने में सफल साबित हुए थे। (गौड़, पालीवाल, पी. 1997)"।[4]

प्रौद्योगिकी अभिग्रहण प्रक्रिया में लोकसंचार माध्यमों बनाम आधुनिक संचार माध्यमों की भूमिका

हमारे देश में परंपरागत संचार माध्यमों की कोई कमी नहीं है। लगभग प्रत्येक राज्य, जिले और गांव के अपने लोकसंचार माध्यम हैं और अधिकतर समृद्ध और विस्मयकारी है। ये माध्यम लोकप्रिय भाषाओं और वहां के मूल स्थान की स्थानीय बोली का ही इस्तेमाल करते हैं। प्रत्येक माध्यम का अपना स्वरूप, ढंग और उपयोगिता है। अब यदि हम प्रौद्योगिकी अभिग्रहण प्रक्रिया में जागरूकता, ज्ञान, दृष्टिकोण और मनोगत मूल्यांकन क्रिया की दृष्टि से सर्वाधिक लोकप्रिय परंपरागत संचार माध्यमों की विशेषताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण करें तो पाएंगे कि उनमें से अधिकतर एक विषय के बारे में संपूर्ण ज्ञान देने तथा लोगों को जागरूक करने के तो अच्छे स्रोत हैं, पर उनके द्वारा दी जाने वाली जानकारी / ज्ञान मध्यम स्तर का होता है। दूसरी तरफ, आधुनिक संचार माध्यम किसी

विषय की संपूर्ण जानकारी देने और जागरूकता पैदा करने के तो अच्छे स्रोत होते हैं, पर श्रोताओं के दृष्टिकोण के स्तर में बदलाव लाने में बहुत कम उपयोगी हैं हालांकि ज्यादातर प्रसारित संदेशों के मनोगत मूल्यांकन का मौका देते हैं।

नए युग के लोकसंचार माध्यमों की प्रासंगिकता

विकास के लिए लोकसंचार माध्यमों के उपयोग के हमारे पिछले अनुभव और शोध यह साबित करते हैं कि इन माध्यमों में लोगों को शिक्षित करने और उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करने की असीम क्षमता है। अनेक राजनीतिक नेताओं, समाज सुधारकों, राज्य एवं केंद्र सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों विकास कार्यों में जुटी एजेंसियों तथा अनुसंधान संस्थानों ने अनेक सामाजिक मुद्दों के बारे में लोगों को जागरूक करने तथा उन्हें कार्यवाही करने को प्रेरित करने के लिए इन लोकसंचार माध्यमों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया है। पहाद. ए. (2000) के अनुसार, यदि लोगों के जीवन में सामाजिक बदलाव लाने के लिए संचार का सही मायने में उपयोग करना है तो उसका आधार समुदाय की मान्यताओं और मूल्यों पर टिका होना चाहिए। साथ ही वह सम्मानीय और विश्वसनीय होना चाहिए। लोकसंचार माध्यम उपरोक्त मापदंडों पर खरे उतरते हैं।"

लोककला, शैलियां, नए विचार और सूचनाएं देने के साथ-साथ मनोरंजन और मनबहलाव का भी साधन हैं। सोढी, के. (1980) के अनुसार, "लोक संसार में शिक्षा के बिल्कुल अलग ही मायने हैं। खुशी तथा गम, पूर्व विचारों और उम्मीदों तथा प्यार एवं प्रमोद के सहारे हम अपने आप को देखते हैं और पहचानते हैं अपनी कमजोरियां। तब शिक्षा ज्ञान अर्जित करने का माध्यम नजर आती है, कुछ पा लेने का जरिया नहीं"।

देवदास (1978) ने प्रभावशाली संचार के लिए परंपरागत संचार माध्यमों के उपयोग पर बल दिया, "गृह विज्ञान पढ़ाने के लिए माध्यमिक स्कूलों में अनेक परंपरागत तरीके इस्तेमाल में लाए जा सकते हैं। इनमें कथा वाचन, लोकगीत और नृत्यों में असाधारण क्षमता है क्योंकि उनके द्वारा बहुत रुचिकर और प्रभावशाली तरीके से साक्षरता को बढ़ाया जा सकता है।"

श्राम (1961) ने भी इस बात पर बल दिया कि आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए जनसंचार माध्यमों का स्वरूप जितना स्थानीय हो सके, उतना बेहतर है। कार्यक्रमों की उत्पत्ति उसके श्रोताओं के बीच से ही होनी चाहिए और ये उन लोगों द्वारा तैयार किए जाने चाहिए, जिन्हें उस संस्कृति की समझ हो, जिससे उन्हें संवाद करना है।

ऊपर उद्धृत किए गए सभी लेखकों ने इस बात को जोर देकर कहा कि ग्रामीण श्रोताओं के लिए लोकसंचार माध्यम या परंपरागत संचार माध्यम सबसे ज्यादा उपयुक्त माध्यम है। वर्तमान युग या नई सहस्राब्दी में भी इन माध्यमों के महत्व पर कोई सवालिया निशान नहीं लगाया जा सकता। सूचना क्रांति हमें हाईटेक संचार उपकरणों और कम्प्यूटर आधारित सूचना प्रणाली जैसे इंटरनेट, ई-मेल, दक्ष प्रणाली, सी.डी. रोम, साइबर कैफे और विश्वव्यापी बस्ती की परिकल्पना के बीच ले आई है, पर केवल हमारे ही देश में सूचना क्रांति का अब जाकर प्रवेश हुआ है और वह भी अधिकतर महानगरों, बड़े शहरों, नगरीय और कुछेक अंतर्नगरीय इलाकों में अभी इसे देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैलने में बहुत समय लगेगा। इसके कारण हैं- लंबी दूरियां, प्रौद्योगिकी के लिए जरूरी उपयुक्त पक्के बुनियादी ढांचे की कमी, साक्षरता का निचला स्तर और भाषायी अवरोध तब तक हमें ग्रामीण जनता तक सूचना का प्रसार करने के लिए परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा। यदि पचास साल या इसके करीब, लोगों द्वारा नए संधार उपकरणों को पूरी तरह आत्मसात कर भी लिया गया तब भी हमें अपने इन माध्यमों की आवश्यकता रहेगी, क्योंकि ये हमारी सदियों पुरानी परंपरा और संस्कृति का हिस्सा है और ग्रामीण जनता में नए ज्ञान का प्रसार करने तथा उनके दृष्टिकोण को बदलने में ज्यादा प्रभावी साबित हो सकते हैं।

दुबे, एस. सी. के अनुसार "विकासशील देशों में आपसी संचार के लिए नई प्रौद्योगिकी की ओर आकर्षित होने तथा परंपरागत तरीकों की उपेक्षा करने की दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति है। संचार माध्यमों के पश्चिमी तरीके भारत जैसे

देश की परिस्थिति के साथ मेल नहीं खाते। इसलिए वांछित प्रभाव पैदा करने के लिए परंपरागत तथा आधुनिक मॉडल्स का सही 'मिश्रण पता लगाने के अनवरत प्रयास जारी रखने होंगे।" (कुमार केवल, जे. 1981)

इस तरह यह स्पष्ट है कि हमारे परंपरागत संचार माध्यम न केवल आधुनिक संचार माध्यमों जितने महत्वपूर्ण हैं बल्कि परंपरागत माध्यमों के कुछ अतिरिक्त लाभ हैं जैसे उनकी स्थानगत प्रकृति, अपनापन, श्रोताओं से अंतरंगता आदि, जो उन्हें और भी अधिक उपयोगी बनाते हैं। इसलिए विकास कार्यों में जुटी एजेंसियों को चाहिए कि वे ग्रामीण जनता के बीच किसी भी प्रकार के विकास कार्य या प्रौद्योगिकी प्रसारण प्रक्रिया के लिए आधुनिक संचार माध्यमों के साथ-साथ परंपरागत संचार माध्यमों के उपयोग पर विचार करें।

उपसंहार

परंपरागत संचार माध्यमों ने देश की विकास प्रक्रिया में बहुत योगदान दिया है। उनका योगदान विकास के लिए किए जाने वाले समाज सुधार, शिक्षा, परिवार नियोजन, राजनीतिक प्रचार, बिक्री बढ़ाने तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। ये संचार माध्यम काफी लंबे समय से नई पीढ़ी में हमारी परंपरा, संस्कृति और नैतिक मूल्यों को स्थापित करने की कोशिश करते रहे हैं। इन संचार माध्यमों में ज्यादा सांस्कृतिक साम्य है, इसलिए इन माध्यमों से दिया गया संदेश ग्रामीण श्रोताओं द्वारा अधिक आसानी से स्वीकार और आत्मसात कर लिया जाता है। इसके अलावा साक्षरता, परिवार नियोजन तथा विभिन्न सामाजिक बुराइयों (दहेज, बाल विवाह, सती प्रथा आदि) के प्रति लोगों का नजरिया बदलने के लिए भी इन संचार माध्यमों का अतीत में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया, जिन्हें बदलना वैसे बहुत कठिन था। इससे भी यह साबित होता है कि ये माध्यम जनसमुदाय के दृष्टिकोण को प्रभावित करने या बदलने में कितने कारगर हैं।

इसलिए यह जरूरी है कि हम आधुनिक संचार माध्यमों के साथ-साथ, जहां तक संभव हो परंपरागत संचार माध्यमों का लगातार और सावधानी से इस्तेमाल करते हुए उन्हें जीवित रखें ये परंपरागत संचार माध्यम केवल उन विकास संबंधी गतिविधियों में ही सहायता नहीं करेंगे, जिनमें ग्रामीण लोगों के साथ बेहद प्रभावी घनिष्ठता की आवश्यकता होती है, बल्कि अगली पीढ़ी तक हमारी समृद्ध संस्कृति, परंपरा और मूल्यों के संरक्षण और संप्रेषण में भी मदद देंगे।

संदर्भ सूची

1. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और हिंदी – डॉ. रेशमा नदाफ – पृ. सं. 6
2. अखिल गीत शोध दृष्टि, जून 2022 – जनसंचार माध्यम और ग्रामीण विकास, लाड़लेमशाक पी. नदाफ, पृ. सं. 66
3. कुरुक्षेत्र, अक्तूबर 2003- परंपरागत संचार माध्यम : ग्रामीण विकास में भूमिका और प्रासंगिकता, डॉ. रूपसी तिवारी, बी. पी. सिंह, डॉ. राहुल तिवारी, पृ. सं. 22
4. कुरुक्षेत्र, अक्तूबर 2003- परंपरागत संचार माध्यम : ग्रामीण विकास में भूमिका और प्रासंगिकता, डॉ. रूपसी तिवारी, बी. पी. सिंह, डॉ. राहुल तिवारी, पृ. सं. 23

हिन्दी साहित्य मे जयशंकर प्रसाद का स्थान...

उषा देवी जी.
सहायक प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सर एम वी गवर्नमेंट आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज
भद्रावती

छायावाद के प्रवर्तक श्री जयशंकर प्रसाद हिन्दी के इस युग के महान कवियों में अपना अन्यतम स्थान बनाए हुए हैं। आप कवि के अतिरिक्त उपन्यासकार, नाटककार तथा कहानीकार के रूप मे भी प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में अति लोकप्रिय होनेवाले 'छायावाद' के प्रवर्तक, बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे।

जीवन परिचय

जयशंकर प्रसाद का जन्म 1890 ई. में काशी के सुघनी साहू नामक प्रसिद्ध वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पिता देवीप्रसाद भी साहित्य प्रेमी थे। उनके पितामह शिवरत्न साह परम शिवभक्त और दयालु थे। युग प्रवर्तक साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने गद्य और काव्य दोनों ही विधाओं में रचना करके हिन्दी को अत्यंत समृद्ध किया है। कामायनी महाकाव्य उनकी कालजयी कृति है, जो आधुनिक काल की रचना कही जा सकती है। अपनी अनुभूति और चिंतन को उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद का स्थान सर्वोपरि है। महाकवि, कथाकार, नाटककार जयशंकर प्रसाद को कौन नहीं जानता? प्रसाद बचपन से ही उनका प्रेम और रुझान हिन्दी साहित्य की ओर दिखता है। उन्होंने मात्र 9 साल की उम्र में अपना गुरु- 'राममय सिद्द' को एक सवया लेख लिख कर जिसका नाम था 'कालाधर' अपनी प्रतिभा दिखायी थी।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद का आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिन्दी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दी। कवि के रूप में निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तंभ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। नाटक लेखक में भारतेंदु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढते है, बल्कि उनकी अर्थगर्भित तथा रंगमंचिया है। प्रासंगिता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्व पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांत गांधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिकता योगदान रहा है। इसके अलाव कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई योगदान कृतियाँ दी।

भारतीय दृष्टि तथा हिन्दी के विन्यास के अनुरूप गंभीर निबंध लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मानुष के अनेकानेक गौरव पूर्ण पक्षों का उद्घाटन कलात्मक रुप से किया है। डा. तिलक सिंह ने कहा कि- जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी साहित्य की छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक रचनाकार रहे हैं। इन्होंने कविता, कहानी, निबंध, नाटक, उपन्यास, अलोचना और पत्रकारिता के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित किए, आँसू, झरना, लहर, कालजयी काव्य कृतियों की रचना की। इनका प्रबंध काव्य कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य की अन्यतम रचना है।

इनके प्रबंध काव्य के क्षेत्र में प्रसाद की किर्ति का मूलाधार कामायनी है। खाड़ी बोली का यह आदि महाकाव्य छायावाद और खाड़ी बोली की काव्य गरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानंदन पंत इसे हिन्दी में

ताजमहल के समान मानते है। शिल्पविधि एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खाड़ीबोली के किसी भी काव्य में नहीं की जा सकती हैं।

भावार्थ-संकेत:-

गुप्तजी की तुलना में अधिक सघनता के साथ प्रसाद इस पुनरूत्थानवादी प्रवृत्ति को स्वर देते हैं। अतीत और खास करके हिन्दू भारत का गौरव गान उनका अत्यंत प्रिय पक्ष है, जिसकी भित्ति पर ही उनकी नवोन्मेषकारिणी राष्ट्रीयता की भावना टिकी हुई है। राष्ट्र-प्रेम और स्वतंत्रता संघर्ष के लिए आह्वान की प्रेरणा वहीं से शक्ति ग्रहण करती है। प्रासाद अपने नाटकों में विशेष रूप से अखण्ड हिन्दू भारत की परिकल्पना पेश करते है और संघर्ष तथा बलिदान की मिसाल खाड़ी करने वाले सन्दर्भो एवं पात्रों की रचना करते हैं। हिमाद्री तुंग श्रृंग से ऐसे ही संदर्भ की एक ललकार भरी कविता है।"[1]

श्री जयशंकर प्रसाद हिन्दी के इस युग के महान कवियों में अपना अन्यतम स्तान बनाए हुए है। आप कवि के अतिरिक्त उपन्यासकार, नाटककार तथा कहानीकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में अति लोकप्रिय होने वाले "छायावाद" के आप प्रवर्तक माने जाते हैं। आपका महाकाव्य 'कामायनी' इस युग का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। आपका "आँसू' नामक खण्ड काव्य भी बड़ा लोकप्रिय हुआ। "लहर' रचना में आपके बड़े सुन्दर गीत संग्रहीत है। "झरना" में भी आपके कुछ मधुर गीत संकलित है। लिखित पुस्तकों में "आँसू" और "झरना" से दो अंश दिए गए हैं। आपके नाटक भारत के पौराणिक गौरव को ऐतिहासिक पृष्ट भूमि के साथ चित्रित करते हैं। अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी स्कंदगुप्त आदि आपके प्रसिद्ध नाटक हैं। आपकी कहानियाँ बड़ी रोचक, सुन्दर एवं मार्मिक होती हैं।

मधुआ, ममता, आकाशदीप आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। "काव्य और काल तथा अन्य निबंध" आपके निबंधों का संग्रह है। 'कंकाल' और 'तितली' आपके उपन्यास हैं जिनका हिन्दी उपन्यास के विकास में अपना निजी योगदान है। "कामायनी" में अपने उपनिषद की कथा के पात्रों को मनोवैज्ञानिक रूपक के द्वारा प्रस्तुत एवं चित्रित किया है। आपके इस महाकाव्य में दार्शनिक दृष्टिकोण अभिचित्रित किया गया है। इस महाकाव्य पर आपको "मंगला प्रसाद पारितोषिक" प्राप्त हुआ था।

प्रतिभा:- प्रसाद जी का जीवन कुल 48 वर्ष का रहा है। इसी में उनकी रचना प्रक्रिया इसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रतिफलित हुई कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। कविता, उपन्यास, नाटक और निबन्ध सभी में उनकी गति समान है। किन्तु अपनी हर विधा में उनका कवि सर्वत्र मुखरित है। वस्तुतः एक कवि की गहरी कल्पनाशीलता ने ही साहित्य को अन्य विधाओं में उन्हें विशिष्ट और व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये अनुप्रेरित किया। उनकी कहानियों का अपना पृथक् और सर्वथा मौलिक शिल्प है, उनके चरित्र-चित्रण का, भाषा सौष्ठव का, वाक्यगठन का एक सर्वथा निजी प्रतिष्ठान है। उनके नाटकों में भी इसी प्रकार के अभिनव और श्लाध्य प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर उनकी बहुत आलोचना की गई तो उन्होंने एक बार कहा भी था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिये न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। उनका यह कथन ही नाटक रचना के आन्तरिक विधान को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर देता है। साहित्य के सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी एक नवीन स्कूल और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने में सफल हुये हैं। वे छायावाद के संस्थापकों और उन्नायकों में से एक है। वैसे सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में इस नव-अनुभूति के वाहक वही रहे हैं और प्रथम विरोध भी उन्हीं को सहना पड़ा। भाषाशैली और शब्द-विन्यास के निर्माण के लिये जितना संघर्ष आपको करना पड़ा है, उतना दूसरों को नहीं।

प्रसाद की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम, रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ आपने काव्यप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं। प्रसाद जी के काव्य साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा और भव्यता बड़े प्रभावशाली ढंग से

प्रस्तुत हुई है। आपके नाटकों के गीत तथा रचनाएँ भारतीय जीवन मूल्यों को बड़ी शालीनता से उपस्थित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को अपने साहित्य में सर्वत्र स्थान दिया है। आपकी अनेक रचनाएँ राष्ट्र प्रेम की उत्कृष्ट भावना जगाने वाली हैं। प्रसाद जी ने प्रकृति के विविध पक्षों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया है। प्रकृति के सौम्य सुन्दर और विकृत भयानक, दोनों स्वरूप उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति का आलंकारिक मानवीकृत, उद्दीपक और उपदेशिका स्वरूप भी प्रसादजी के काव्य में प्राप्त होता है। प्रसाद प्रेम और आनन्द के कवि हैं। प्रेम-मनोभाव का बड़ा सूक्ष्म और बहुविध निरूपण आपकी रचनाओं में हुआ है। प्रेम का वियोग-पक्ष और संयोग-पक्ष, दोनों ही पूर्ण छवि के साथ विद्यमान हैं। 'आँसू' आपका प्रसिद्ध वियोग काव्य है। उसके एक-एक छन्द में विरह की सच्ची पीड़ा का चित्र विद्यमान है।

जयशंकर प्रसाद की रचनाएं

प्रसाद का जीवन रचनाओं से भरा हुआ है। उनकी रचनाएं भारत के गौरवमय इतिहास व संस्कृति से अनुप्राणित है। कामायनी उनका सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य है, जिसमें आनन्दवाद की नई संकल्पना समरसता का संदेश निहित है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- झरना, ऑसू, लहर, कामायनी, प्रेम पथिक (काव्य) स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जन्मेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, अजातशत्रु, विशाख, एक घूँट, कामना, करुणालय, कल्याणी परिणय, अग्निमित्र, प्रायश्चित, सज्जन (नाटक) छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इंद्रजाल (कहानी संग्रह) तथा कंकाल, तितली, इरावती (उपन्यास)।

जयशंकर प्रसाद की साहित्यिक विशेषताएं:-

बचपन से ही उनकी रुचि साहित्य की ओर थी। इन्दु नामक मासिक पत्रिका का उन्होंने सम्पादन किया। साहित्य जगत में इन्हें वहीं से पहचान मिली प्रेम समर्पण कर्तव्य एवं बलिदान की भावना से ओतप्रोत उनकी कहानियों पाठक को अभिभूत कर देती है। यह हिंदी साहित्य को अपनी साधना समझते थे। महाकवि जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य में योगदान देने वाले रचनाकारों में से एक थे। उन्होंने अपनी कहानियों, नाटक तथा कविताओं के जरिए हिंदी साहित्य में अपना माधुर्य बिखेरा। राजनीतिक संघर्ष तथा संकट की स्थिति में राजपुरुष का व्यवहार उन्होंने बड़ी गहराई से समझा और लिखा। आधुनिक उपन्यास के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद जी ने यथार्थ और आदर्शवादी रचनाकारों का सूत्रपात किया।

नाटक:- प्रसाद ने 8 ऐतिहासिक, 3 पौराणिक और 2 भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। कामना और एक घूंट को छोड़कर शेष इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास की सामग्री है। आप हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार है। उनके नाटकों में सांस्कृतिक व राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है। स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, जन्मेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, कामना, एक घूंट आदि प्रमुख नाटक हैं।

जयशंकर प्रसाद की भाषा शैली

हमारे देश के सबसे बड़े कवियों में से एक जयशंकर प्रसाद जी ने अपने काव्य लेखन की शुरुआत ब्रजभाषा में की, लेकिन धीरे-धीरे वे खड़ी बोली की तरफ भी आते गए और उनको यह भाषा शैली पसंद आती गई। इनकी रचनाओं में मुख्य रूप से भावनात्मक, विचारात्मक chitात्मक और भाषा शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। इनकी शैली अत्यंत मीठी और सरल भाषा में थी जिनको कोई भी आसानी से पढ़ और समझ सकता था।

जयशंकर प्रसाद के लेखन का दूरगामी प्रभाव:-

हिंदी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना का श्रेय प्रसाद को जाता है। इनके खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। आपके बाद के कई प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी लेखनी को खूब सराहा है। इनकी वजह से ही बाद में खड़ी बोली हिंदी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

प्रसाद जी की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख:-

जयशंकर प्रसाद छायावाद युग के प्रमुख कवि माने जाते हैं। आपके समान सौन्दर्य के प्रेमी कवि बहुत ही विरले हैं और पार्थिव सौन्दर्य को स्वर्गीय महिमा से मंडित करके प्रकट करने की सामार्थ्य तो इतनी और किसी में है ही नहीं। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन विश्व साहित्य को 'कामायनी' जैसे महाकाव्य ग्रंथ प्रदान करने वाले छायावादी कवि प्रसाद के लिए कहा गया है, प्रसाद जी निश्चय ही आधुनिक हिंदी साहित्य के कलाकार हैं। इस पारसमणि को पाते ही द्विवेदी युग का लौह काव्य छायावाद की कंचनी-कांति से देदीप्यमान हो उठा। उनमें एक नयी आभा, एक नया सौन्दर्य, एक नई रसिकता, एक नई भंगिमा के साथ नवस्फूर्ति का संचरण हुआ। उनकी काव्यगत विशेषतायें हैं- प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ आपने काव्यप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं।

संदर्भ / आधार ग्रंथ

1- काव्य वैभव- स. दूधनाथ सिंह.
2- हिन्दी काव्य संग्रह- सं. शशिशेखर तिवारी.
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास- हिन्दी अभ्यास पुस्तिका...
* डॉ. आर. पी. शर्मा.
• अरुणा गावाना.
• प्रोफेसर सुरेन्द्र कुमार जाह
• राधा.
• अजय कुमार ठाकुर.

ध्रुवस्वामिनी नाटक में अंकित समस्याएं

आशा बि
शोधार्थी
कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़

प्रसाद युगीन नाटककारों में जयशंकर प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने लगभग 12 नाटकों की रचना की है जिसमेंजय जन्मेजय का नाग यज्ञ चंद्रगुप्त स्कंद गुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी का विशेष महत्व है। इन नाटकों में प्रसाद जी की नाट्य कुशलता को दर्शाया गया है साथ ही साथ उनकी कला का नाट्यकला का क्रमशः विकसित होता गया है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक प्रसाद जी द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण नाटक है जिसमें इतिहास एवं कल्पना की संयोग को देख सकते हैं ध्रुवस्वामिनी नाटक एक ऐतिहासिक नाटक है। जो विशाखा के देवी चंद्रगुप्त को आधार बना करआधार बनाकर लिखा गया है राम गुप्त गुप्त साम्राज्य का सम्राट है। ध्रुवस्वामिनी उसकी सामज्ञी है। ध्रुवस्वामिनी मन ही मन चंद्रगुप्त से प्रेम करती है। इस नाटक में प्रसाद जी नवीनतम का प्रयोग किया है। इसमें वे समस्या नाटकों की परंपरा का सूत्रपात करते जान पड़ते हैं।

ध्रुवस्वामिनी नाटक के अंतर्गत नारी समस्या को प्रमुख/ विशेषता के साथ चित्रित किया गया है जिसमें अनमेल विवाह दहेज प्रथा पुनर्विवाह की समस्या तथा नारी उत्थान और युवराज की समस्या प्रमुख है। इस नाटक में कुल तीन अंक है। प्रत्येक अंक में केवल एक ही दृश्य है। प्रसाद जी ने इस नाटक में नारी की दयनीय दशा का चित्रण किया है। नारी का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। उसे केवल भोग विलास या मनोरंजन की उसे केवल भोग विलास वस्तु समझा जाता है। इसी कारण शक राज संधि प्रस्ताव में ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है। प्रसाद जी इस घटना के जरिए यह दर्शा ना चाहते हैं कियह दर्शना चाहते हैं कि नारी की ऐसी दशा यथार्थ नारी का वह रूप नहीं है जो गुप्त काल में था। आज भी समाज में नारी को वह सम्मान नहीं मिलता है जिसकी वह हकदार है।

युवराज की समस्या

ध्रुवस्वामिनी नाटक का आरंभ युवराज की समस्या को लेकर शुरू होती है। योग्य और कुशल व्यक्ति को ही राजा बनना चाहिए। यही प्रथा है कि अयोग्य व्यक्ति को शासन करने का अधिकार नहीं होता है। इस नाटक में राम गुप्त को विलासी कायर कर्तव्य ही तथा आचरण से पतित सिद्ध करता है। निश्चित र रूप में देखा जाए तो राम गुप्त योग्य उत्तराधिकारी नहीं है। इस नाटक से यह सिद्ध होता है कि राजा कभी भी अत्याचारों को सहन करना नहीं है बल्कि उसके विरुद्ध खड़ा होना है। राम गुप्त में ऐसी कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। इसलिए राम गुप्त जैसे विलासी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहीं है। ऐसे व्यक्ति को पदच्युत करना श्रेयस्कर हैI

अनमेल विवाह

ध्रुवस्वामिनी नाटक की मूल समस्याओं के मूल मेंअनमेल विवाह को देखते हैं। सम्राट चंद्रगुप्त को युवराज पद प्रदान करते हैं राम गुप्तउस गद्दी के लायक न था इसलिए कि वह कायर आलसी था चरित्रहीन था। ध्रुवस्वामिनी चंद्रगुप्त की ओरआकर्षित थी लेकिनशिखर स्वामी की चाल सेराम गुप्त को राजा बनाया जाता है और ध्रुवस्वामिनी के साथ विवाह भी किया जाता है। हिंदू समाज में पति पत्नी का संबंधअटूट और पवित्र माना जाता है। जबशकर आज का प्रस्ताव मान लेता है तो ध्रुवस्वामिनी अपनी रक्षा हेतु उस से विनती करती है उसके सामने गिड़गिड़ाती

है। परंतु राम गुप्त परकुछ भी असर नहीं करता है। ऐसी स्थिति में ध्रुवस्वामिनी के मन मेंनारी चेतना जागृत होती है। तब वह इस प्रकारकहती है – "पुरुषों नेस्त्रियों को अपनीपशु संपत्तिसमझ कर उन परअत्याचार करने काअभ्यास बना लिया हैवह मेरे साथ नहींचल सकता है नारी कागौरव नहीं बचा सकते तोमुझेबेच भी नहीं सकते हो।"

पुनर्विवाह की समस्या

भारतीय समाज में नारी कापुनर्विवाह एक जटिल समस्याअन है।प्राचीन समय में पुनर्विवाह कीप्रथा नहीं थी। लेकिन प्रसाद जी ने इस नाटक में धर्मशास्त्र का आधार लेकर नारी के पुनर्विवाह और मोक्ष की व्यवस्था की है। ध्रुवस्वामिनी प्रारंभ से ही चंद्रगुप्त से आकर्षित थी लेकिन उसका विवाह राम गुप्त से हो जाता है। नाटक के अंत में ध्रुवस्वामिनी का विवाह चंद्रगुप्त से कराने की बात कहते हैं। चंद्रगुप्त को मारने के प्रयास मेंसामंत द्वारा राम गुप्तस्वयं जाता है।ऐसे अवसर पर पुनर्विवाह के अतिरिक्त अन्य दूसरा उपाय शेष नहीं रहता। इस प्रकार प्रसाद इस नाटक में नारी के पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया है।

नारी उत्थान की समस्या

ध्रुवस्वामिनी नाटक के माध्यम से प्रसाद जी नेनारी उत्थान की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। उन्होंने पुरुष की क्रूरता एवं उनकी हैवानियत से नारी को मुक्त कराने का प्रयास किया है। इस नाटक में प्रेम एवं क्षमा की मूर्ति नारी को नाटक के जगह जगह परउनके अधिकारों की बात कही है। नारी के ऊपर होने वालीअत्याचारों का विरोध किया है और उसके साथ साथ उन्हेंसम्मानजनक वातावरण प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार प्रसाद जी ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से नारी की दयनीय अवस्था को बताने के साथ-साथ उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया है। इसमें इतिहास के साथ साथ कल्पना का सुंदर समन्वयकिया तथानारी के अधिकारों की बात कही है। इसमें नारी जीवन से जुड़ेसमस्याओं को अत्यंतहृदयस्पर्शी एवं मार्मिक रूप में बताया गया है। समग्रत यह नाटक नाट्यकला समस्या दृष्टि से एकसफल नाटक है।

नारी की सामाजिक स्थिति की समस्या

हम सभी जानते हैं कि विदेशी सभ्यता की चकाचौंध कर देने वाली जीवन की पद्धतियां व साहित्य के वातावरण में जब भाजबभारतीय जनमानस अपने को भूल करअपने को भूलकर अपनी परंपरा सभ्यता और राष्ट्रीयता का भाव जागृत किया। विदेशी जीवन से प्रभावित लोगों ने नारी को केवल मोक्ष ही एक उपाय माना है लेकिन प्राचीन विचारधाराओं को रखने वाले लोग मोक्ष या तलाक को निम्न मानते हैं इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से नारी के जीवन को असामान स्थिति तथा उसका समाधान बताया गया है।

पुरुष की पशुवत वृत्तियां स्त्री जीवन की कोमल भावनाओं के स्वाभाविक विकास में शुरू से ही अवरोधक रही है। इस का उत्तम उदाहरण है ध्रुवस्वामिनी और राम गुप्त का बेमेल विवाह। राम गुप्त सुरा और सुंदरियों के भीड़ में रात दिन व्यस्त रहता है। जिसके परिणाम स्वरुप शकराजा के आक्रमण के जाल में फस जाता है और परिणाम स्वरूप संधि प्रस्ताव को मानना पड़ता है। राजा की मर्यादा पुरुषत्व मानवता तथा पति की नैतिकता को कलंकित करने वाला प्रस्ताव मानने वाला राम गुप्त अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शक राज के पास जाने का आदेश देता है। उस समय नारी का सम्मान गौरव को ठेस पहुंचती है। पत्नी होने की दुहाई देती है लेकिन राम गुप्त उसकी किसी भी बात पर ध्यान नहीं देता है। ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त के बेमेल विवाह के दुष्परिणाम को दिखाने के साथ साथध्रुवस्वामिनी और राम गुप्त के बेमेल विवाह के दुष्परिणाम को दिखाने के साथ साथ शक राज और कोमा की प्रेम प्रसंग के माध्यम से नारी समस्या का एक अन्य दृश्य को प्रस्तुत किया है।

कोमा का निस्वार्थ प्रेम समर्पण स्नेहासिक्त भावुकता शक राज की प्रतिहिंसा स्वार्थी प्रवृत्ति तथा राजनीतिक महत्वाकांक्षा का शिकार होती है। जहां ध्रुवस्वामिनी विवाह के बाद भीति के प्रेम सेवंचित होती है तो

वहीं कोमा विवाह से पहले ही अपने प्रेमी से उपेक्षित होती है। शकर राज की वास्तविक मूर्ति के अवलोकन के बाद वह तड़प उठती है। अपने मन के वास्तविक स्वरूप और प्रेम के सच्चे आधार को उपस्थित करती हुई कहती है कि – " मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्त्वमय पुरुष मूर्ति की पुजारिन थी जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़ी रहने को दृढ़ता थी। इस स्वार्थ मालीन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकता हो उस दृढ़ता का दुर्बल कंपित और भयभीत हो।" आकाश के नक्षत्र कुछ बना बिगाड़ नहीं सकते तुम आशंका मात्र दुर्बल कंपित और भयभीत हो। राम गुप्त और शकराज दोनों में इस शक्ति का अभाव है -फलत: दोनों का परिणाम भी एक जैसा ही होता है। नारी स्वावलंबी तथा आत्मनिर्भर होकर ही पुरुष के माया जाल से मुक्त हो सकती है। इस समाज में पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता से प्रभावित लोग नारी के मोक्ष तथा पुनर्विवाह के समर्थक थे किंतु कुछ लोग इसे अभारतीय कहकर निम्न मानते थे प्रसाद जी अंधविश्वास को मानने वाले नहीं थे।

राजनीतिक समस्या

राजनीतिक समस्या ध्रुवस्वामिनी की प्रमुख समस्या नारी की समस्या और नारी का मोक्ष ही है। प्रसाद जी राष्ट्रवादी समस्या को एक देश के राजा से जोड़ते हुए राजनीतिक समस्या के रूप को चित्रित किया है। यदि किसी भी राष्ट्र का शासक विलासी अत्याचारी भ्रष्ट हो तो देश निर्बल हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप देश की शांति व्यवस्था भंग हो जाती है। अनिश्चय एवं अस्थिरता का वातावरण बन जाता है। बाहरी आक्रमण की संभावना बढ़ जाती है। राम गुप्तराम गुप्त ऐसा ही शासक था वह अनाचारी दुराचारी एवं डरपोक बुजदिल था। सुंदरी के मायाजाल में पढ़कर उसने देश की गरिमा को वीरों के पुरुषत्व को दांव पर लगा दिया था। शासक से देश में विभिन्न प्रकार की कुरीतियां ही फैलेगी। इसलिए प्रजा को अपने गौरव की रक्षा के लिए ऐसे शासक के शासन को जड़ से उखाड़ देना चाहिए तभी उस देश और समाज का कल्याण संभव हो पाएगा।

धार्मिक समस्या

धार्मिक समस्या ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों में परिवर्तन करने का प्रयास किया है। विवाह प्रसंग के माध्यम से विवाह संबंधी धार्मिक मान्यता पर टांट की है और संयासी पतित और मृत पति से नारी के मोक्ष की बात पर बल दिया है। समय के अनुसार धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन होना आवश्यक है तभी समाज की उन्नति और विकास का रास्ता प्रशस्त होगा। इस नाटक में नारी की सामाजिक स्थिति और उसका समाधान है नारी की की नाटक में आत्मनिर्भरता तथा स्वावलंबन पर आधारित दूसरी राजनीतिक समस्या का समाधान है। इस नाटक में किसी नयी समस्या का उद्घाटन नहीं किया गया है। इस नाटक में एक ऐतिहासिक सत्य को आधुनिक परिवेश में पुनः जीवित करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतकपृष्ठ संख्या 3-4 2013.
2. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसादखाटू श्याम प्रकाश सेनखाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 18. 2013
3. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 3,2013.
4. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 5, 2013.
5. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 32, 2013
6. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 42, 2013.
7. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 15, 2013.
8. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 17, 2013.

9. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 49, 2013.
10. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन पृष्ठ संख्या 48, 2013.
11. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद खाटू श्याम प्रकाशन रेलवे रोड रोहतक पृष्ठ संख्या 49- 50, 2013.

जयशंकर प्रसाद जी की कथा साहित्य में नारी विमर्श

डा. प्रशांतिनी. पी. मरली
अध्यापिका हिन्दी विभाग,
के. एल. ई. प्रेरणा. पी. यू. विज्ञान महाविध्यालय
हुब्बल्ली–३०

प्रस्तावना:

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहानीकारों का बडा योगदान रहा हैं। साहित्य के अनेक विधावों में एक विधा "कहानीयों " की इस विधा में अनेक कथाकारो ने अपना कलम का जादु बिखेर दिया हौ उन में से एक है श्री जयशंकर प्रसादजी। उनके कहानीयों में नारी विमर्श पर हम चर्चा करेगें जिन्होने समाज मे नारी की यथार्थ स्थिति का सजीव दर्शन दिया हैं।

विषय प्रवेश:

प्रसादजी की कहानीयों में नारी की विविध समस्याओं का चित्रण मिल ता है। नारी का अनादि काल से आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर निर्भर रहना पडता है।अनपढ नारी केवल घर तथा खेती का काम कर सकती है। उसे पैसे के लिए कभी बेटे के सामने, पती के सामने या कभी भाई के सामने हाथ फैलना पडता है। नारी को हमेशा दहेज प्रथा का शिकार बनना पढ रहा है। नारी को मात्र भोग विलास की वस्तु मानकर उसका शोषण किया जाता है। नारी जीवन की विडम्बना और समस्यावों को प्रसादजी ने अपने कहानीयो में यथार्थ चित्रित किया हैं।

१. आकाश दीप : इस कहानी में चंपा एक क्षत्रिय बालिका थी। भारतवर्ष में जान्हवी के तट पर " चंपानगरी मे उसका घर था। उसके पिता नाव पर प्रहरी था। चंपा के पिता ने अपने प्राणों पर खेलकर अपने मालिक की रक्षा की किंतु वह स्वंय संघर्ष में मारा गया। मणिभद्र बुध्दगुप्त को बंदी बना लेता है। पिता के मरने के बाद चंपा अकेली रह गई निराश्रित चंपा को मणिभद्र अपनी काम– वासना का शिकार बनाना चाहता था। चंपा ने जब विरोध किया तो भणिभद्र ने चंपा को भी बंदि बना लिया। बुध्दगुप्त भारत का रहने वाला क्षत्रिय था । ताम्रालिप्ति का निवासी बहुत दिनो से हत्या–लोटमार करके अपना जीवन व्यतीत करता था। मणिभद्र बुध्दगुप्त का बंदी बनाकर अपरिचित व्दीप मे छोडने जा रहा था। लहरों में जहाज उतरता चला गया। चंपा और बुध्दगुप्त एक नए व्दीप पर पहुंच गए। उसका नाम बुध्दगुप्त ने रखा "चंपाव्दीप" बुध्दगुप्त व्यापार व्दारा समृध्दि पालेता है। व्दीप के आदिवासीयों पर अपना अधिकार जमा लिया। किंतु चंपा के मन मे पितृघातक बुध्दगुप्त के प्रति प्रतिशोध की भावना है। वह अपने पास कटार छिपाकर रखती है। बुध्दगुप्त ने चंपा के लिए एक शानदार महल बनवाया/ चंपा को वह रानी कहने लगता है। लेकिन चंपा महल मे अभ्रक के मंजूषा में "आकाश दीप" जलाती रहती है। और बुध्दगुप्त का बताती है की वह अपने मृत पिता को आकाश दीप दिखाती है। जिसमे उसकी पथ भ्रष्ट आत्मा को मार्ग मिले। इसी प्रकार उसकी माँ भी ऐसे ही करती थी चंपा की इच्छा समझकर बुध्दगुप्त ने व्दीप मे एक विशाल प्रकाश स्तंभ बनवाया। चंपा व्दीप स्तंभ आकाश दीप नियमित रुप से जलाने लगी। बुध्दगुप्त से प्रेम करते हुए भी उसके विवाह बंधन मे नही बंध पाती है चंपा। अंत मे बुध्दगुप्त चंपा से भारत चलने की इच्छा प्रकट करता है। लेकिन चंपा उस स्थान को छोडकर जाने की अनिच्छ व्यक्त करदेती है। बुध्दगुप्त भारत लौट गया। चंपा आँखों मे आँसू भरे आकाश दीप जलाती रहती है। उसकी जीवन साधना मे व्यतीत होने लगा। वह नियमित रुप से आकाश दीप जलाकर प्रतिक्षा करती रही चंपा। फिर चंपा की मृत्यु होगई उसके मृत्यु के बाद भी व्दीप के निवासी चंपा के स्मृति मे दीप जलाते और उत्सव विधि संपन्न करते रहे। अंत मे काल के कठोर हाथों ने उस स्तंभ को भी धरा–शाही कर उसे इतिहास के पन्नौकी वस्तु बना दिया।

२. इंद्रजाल: इस कहानी मे गाँव के बाहर एक छोटे से बंजर मे कंजरों का दल था उस परिवार में टटू, भैंसे और कुन्तो का मिलाकर इक्किस प्राणी रहते थे। उसका सरदार था 'मैकू" ल्म्बी चैडी हड्डियोवाला एक अधेड पुरुष था। दया–माया उसके पास बिलकुल नहीं थे। गाँवों मे भीख माँग ने जब कंजरो की स्त्रियाँ जाती तो उन्के लिए मैकू की आज्ञा थी कि कुछ न मिलने पर अपने बच्चो को पूरी निर्दयता से गृहस्थ के व्दार पर जो स्त्रि न पटक देगी तो उसको भयानक दण्ड मिलता मैकू से। उस निर्दय झुण्ड मे गानेवाली एक लडकी थी। और बाँसुरी बजाने वाला एक लडका था। ये दोनो गा–बजाकर जो पाते वह मैकू के चरणों मे लाकर रख देते थे। फिर भी गोली और बेला की प्रसन्नता की सीमा न थी। उन दोनों का रोस संपर्क ही उन्के लिए स्वर्गिय सुक था। इन धुमककडाँ के दल में ये दोनों विभिन्न रूचि के प्राणी थे। बेला बेडिन थी। माँ के मरजाने के बाद अपने अकर्मण्य पिता के साथ वह कंजरोकी हाथ लग गयी। अपनी माता के गाने–बजाने का संस्कार उसकी नस–नस में भरा हुवा था। वह बचपन से ही अपनी माता का अनुकरण करती हुई आलपती रहती थी बेला। शासन की कटोरता के कारण कंजरों का डाका और लडकियों के चुराने का व्यापार बन्द हो चला था फिर भी मैकू अवसर से नही चुकता था। अपने दल की उन्नथी मे बराबर लगा ही रहता था मैकू। गोली के बाप के मर जाने पर जो एक चतुर नट था–मैकू उसकी खेल की पिटारी के साथ साथ गोली पर अपना अधिकार जमालेता है। गोली बेला के साथ होने पर बाँसुरी बजाने का अभ्यास कर लेता हैं। गोली और बेला दोनों को भानुमती गली पिटारी दोकर दो–चार पैसा कमना अच्छा नही लगता था। इस से ज्यादा क बेला का गाना पसन्द करते हैं। दोनो का झुकाव उसी और होगया। पैसा भी मिलने लगा। इन नवागन्तुक (गोली और बेला) की कंजरों के दल मे प्रतिष्ठा बढने लग जाती है।

३. चुडीवाली : चुडीवाली का नाम था "विलासिनी"। वह नगर की एक प्रसिध्द नर्त की कन्या थी। उसके रुप और संगीत कला की सुख्याति थी विलास के जिवन के होते हुवे भी विलासिनी को संतोष न था। वास्तव में उसकी मनोवृति उसके व्यवसाय के प्रतिकूल थी। वह कुलवधू बनना चाहति थी विलासिनी। विलासिनी के उसके अपने व्यवसाय में बहुत सारे लोग आते थे लेकिन विलासिनी अपना हृदय खोलकर किसी से प्रेम कर न सकती थी। उन्हीं दिनो सरकार के रुप यौवन और चरित्र्य ने विलासिनी को प्रलोभन किया। नगर के समीप बाबू विजयकृष्ण की अपनी जमीनदारी थी। बडी सुँदर अटालिका भी थी। अब के प्रजा उन्हें सरकार कहकर पुकारती थी। विलासिनी की आँखे विजयकृष्ण पर गड गयी। अपना चिर–साज्जित मनोरथ पूर्ण कर्ने के लिए वह कुछ दिनो के लिए "चूडीवाली" बन गयी थी विलासिनी। इस कहानी के अंत मे विलासिनी कहती हैं" सर्कार मैने ग्रहस्थ कुलवधु होने लिए कठोर तपस्या की है। इन चार वर्षा मे मुझे विश्वास होगया है कि कुलवधु होने मे जो महत्व है वह सेवा का है न कि विलास का"। मेरी सफलता आपकी कृपा पर है। विश्वास है कि अब इतने निर्दय न होंगे– कहकर चूडीवाली (विलासिनी) सरकार के पैर पकड लेति है।

निष्कर्ष

अंत मे इतना कहा जा सकता है हिन्दी साहित्य मे कहानी को सुंदर तथा सरल बनाने का श्रेय प्रसादजी को जाता हैं। लोक जीवन के संमृध्द परंपरा को परस्पर शैलियों मे प्रस्तुत करने का कार्य प्रसाद जी ने किया हैं कहानियों की भाषा कथ्य शिल्प आदि कि दृष्टि से सृजनात्मक कहानीयों की रचना प्रसाद जी की है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक यथार्थवाद सभी विषयों का उल्लेख इनकी रचनावों से होजाती है। प्रसाद्जी की कहानियाँ संवेदनाशिलता तथा संघर्षशिल समाजको बहुत आगे लेजाने का कार्य करते है